TEXT CROSS WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186541
UNIVERSAL
LIBRARY

श्रीविष्णु-सस्ती-पुस्तकमाला

सरल-विज्ञान-सीरीज संख्या १

सरल शरीर विज्ञान

सम्पादक—

नारायणदास बाजोरिया बी० ए०

गंगाप्रसाद भोतिका एम० ए० बी० एल० काव्यतीर्थ

अनुवादक—

शरीर विज्ञानके एक विद्यार्थी

प्रकाशक—

साहित्य संवर्द्धिनी समिति

प्रथमवार] कार्तिक सं० १९८० [मूल्य ॥|) सजिल्द

प्रकाशक—
नारायणदास बाजोरिया बी०ए०
मंत्री—
साहित्य-संवर्द्धिनी-समिति
११७, हरिसन रोड,
कलकत्ता

Checked 1969

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका,
"हनुमान प्रेस"
नं० ३, माधव सेठ लेन,
(बेहरापट्टी) कलकत्ता।

समर्पण

यह रूखा सूखा पुष्प
प्रकाशक द्वारा
पूज्य चाचाजीके चरणकमलोंमें
सादर सप्रेम
समर्पित किया जाता है,
जिनके अपूर्व उत्साह,
अनवरत कार्यतत्परता
और
मानापमानकी तुल्यताके कारण
श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती अस्पताल
और
श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय
रूपी दो सर्वोत्कृष्ट संस्थाओंकी
हमारे समाजमें
स्थापना और वृद्धि हुई है।

निवेदन

आज प्रायः दश वर्ष पीछे साहित्य-संवर्द्धिनी-समितिकी यह पुस्तक हिन्दी-संसारके सम्मुख उपस्थित करनेमें संकोच और हर्ष दोनों होते हैं।

जिस समय मैं श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वती-विद्यालयके थर्ड क्लासमें पढ़ता था, गर्मियोंकी छुट्टीमें मेरे पूज्य गृह शिक्षक श्रीमान् गिरिजाकान्त लाहिरी महोदयने—जिनके अनवरत उत्साह और उपदेशके कारण ही मैं कुछ विद्या-लाभ कर सका हूं—मुझे Macmillan's Science Primersको दो पुस्तकें (Chemistry और Physics Primers) पढ़नेको दीं। मैंने उन्हें स्वयं अवकाशके समय पढ़ा। इनके पढ़नेसे मैंने इन विषयोंके सिद्धान्तोंका ज्ञान भी प्राप्त किया और मुझे उपन्यास पढ़नेका सा मनोरंजन भी हुआ। जिस समय मैं Intermediate in Scienceके क्लासमें पढ़ता था, मुझे इन विषयोंके सिद्धान्तोंको जाननेके कारण आगेके विषयोंको समझनेमें अत्यन्त सुगमता होती थी और मैं अपने अध्यापकके व्याख्यानोंको अच्छी तरह समझ सकता था।

उसी समयसे मेरी इच्छा हुई कि इस विज्ञान ग्रंथमाला (Science Series) के दश विषयोंकी दश पुस्तकें यदि हिन्दीमें

प्रकाशित कर दी जायं तो हिन्दी-भाषा-भाषी बालकों और साधारण जन-समुदायको अत्यन्त लाभ पहुंचे। ये दश पुस्तकें निम्नलिखित विषयोंपर हैं :--

१ विज्ञानकी प्रारम्भिक भूमिका (Introductory)

२ रसायन शास्त्र (Chemistry)

३ भौतिक विज्ञान (Physics)

४ प्राकृतिक भूगोल (Physical Geograph y)

५ भूगर्भ विज्ञान (Geology)

६ शरीर विज्ञान (Physiology)

७ वनस्पति विज्ञान (Botany)

८ ज्योतिष विज्ञान (Astronomy)

९ अर्थशास्त्र (Economics)

१० तर्कशास्त्र (Logic)

ये सभी पुस्तकें अपने अपने विषयोंके सर्वविख्यात जगत्-प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं और इनमें कठिन कठिन विज्ञानके मूल सिद्धान्त इतनी सरल भाषा, सरल रीति और चित्रों द्वारा समझाये गये हैं कि साधारण बुद्धिके बालक और जन-साधारण अध्यापककी सहायता बिना भी उन्हें अच्छी तरह समझ सकते हैं। मेरी सम्मतिमें सरल-बुद्धि बालकोंको विज्ञानके मूल सिद्धान्तोंको भी समझाना बहुत कठिन कार्य्य है और यह काम बड़े बड़े विद्वानों द्वारा ही हो सकता है।

अंगरेजीमें इस ग्रंथमालाकी पुस्तकें पहिले पहिल सन् १८७८

ई० में प्रकाशित हुई थीं। इसके बाद एक एक पुस्तकके दश दश बीस बीस हजार प्रतियोंके बीस तीस संस्करण आजतक प्रकाशित हो चुके हैं। जिस अंगरेजी भाषामें एक एक विषयके हजारों ग्रन्थ बराबर निकला करते हैं उस भाषामें इस ग्रन्थमालाके इतने संस्करण प्रकाशित होना ही इस मालाकी श्रेष्ठताका प्रमाण है।

मेरे अनुरोधसे मेरे मित्र बाबू दुर्गाप्रसादजी खेतान एम० ए०, बी० एल०, एटर्नी-ऐट लाने दश वर्ष पहले Astronomy Primer का तो अनुवाद कर दिया था। इस पुस्तकको हिन्दी-संसारने पसन्द किया और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने भी इसे अपनी परीक्षाकी पाठ्य-पुस्तकोंमें स्थान दिया है।

अब हमने इस ग्रन्थमालाकी बाकी नव पुस्तकोंको प्रकाशित करनेका भी संकल्प किया है और दो तीन पुस्तकों (Geology, Economics Primers) का तो अनुवाद भी हो चुका है। यदि हिन्दी-संसारने इस पुस्तकको पसन्द किया तो ये सभी पुस्तकें शीघ्र ही प्रकाशित की जायंगी।

अब शायद हमारे पाठकोंको यह जाननेकी उत्कण्ठा होगी कि साहित्य-संवर्द्धिनी-समिति द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकोंका हिन्दी-संसारनें आदर किया तोभी इस समितिका कार्य्य इतने दिनों शिथिल क्यों रहा। अंगरेजी भाषामें उत्तमोत्तम, सचित्र और अच्छे कागजपर छपी हुई सस्ती पुस्तक-मालाओं (जैसे Everyman's Library, Nelson's six-penny-series इत्यादि) को

देखकर मेरे चित्तमें संकल्प हुआ कि यदि हिन्दीमें उत्तम और सस्ती पुस्तकें निकलें तो हिन्दी भाषाकी कुछ सेवा बन सके। मेरा यह सिद्धान्त बराबरसे है कि कागज घटिया लगाकर और छपाई जिल्द वगैरह घटिया दे पुस्तकोंका मूल्य सस्ता करना यथार्थ सस्तापन नहीं है। मेरा तो ध्यान है कि उत्तम कागज तथा अच्छी छपाई, अच्छी जिल्द और चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकोंको सस्ते मूल्यमें बेचना ही सच्चा सस्तापन है। (The cheapest and the best) इस उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए मेरा विचार एक ग्रन्थ प्रकाशक समिति बनानेका हुआ था। मैंने अपना विचार अपने मित्रोंसे प्रकट किया। उन्होंने इसे पसन्द किया और एक फण्ड भी खोला गया। फिर हमने इतनी पुस्तकें प्रकाशित कीं :—

(१) लोकरहस्य—(जिसका कि बंगलासे अनुवाद स्वयं मैंने किया था) मूल्य ≈)॥

इस पुस्तकको हिन्दी-संसारने इतना पसन्द किया कि हमारे संस्करणके बाद इस पुस्तकके दो संस्करण कलकत्ते और एक बम्बईसे प्रकाशित हुए हैं, यद्यपि मूल्य हमारे मूल्यसे चौगुना और छगुनातक रखा गया है।

(२) ज्योतिष-शास्त्र—बाबू दुर्गाप्रसादजी खेतान एम० ए०, बी० एल०, एटर्नी-ऐट-ला द्वारा अनुवादित—मूल्य ।।) कागजकी जिल्द।

(३) रणधीर प्रेममोहिनी नाटक—स्वर्गीय लाला श्रीनिवास दास कृत। मूल्य ≋)

(४) नेत्रोन्मीलन नाटक—ले० पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०, पण्डित शुकदेव विहारी मिश्र बी० ए०। मूल्य ≶)

(५) शिवाबावनी सटीक—ले० बाबू राधामोहन गोकुलजी। मूल्य ≠)॥

(६) श्रीमद्भगवद्गीता—श्रीयुत बाबूराव पराड़कर कृत भाषा टीका सहित। मूल्य ≡)॥

इसकी दश हजार प्रतियां प्रकाशित की गयी थीं जो सब छ महीनेमें ही बिक गईं। श्रीमद्भगवद्गीताका हिन्दी भाषा टीका सहित इतना सस्ता संस्करण शायद अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ।

(७) अमेरिकाके स्वतन्त्रतादाता जार्ज वाशिंगटनका जीवन चरित्र—यह अधूरा छपा हुआ रह गया।

समितिके कार्यके बन्द होनेका कारण धनाभाव तो था नहीं। इसका सम्पूर्ण भार मुझपर था। जिस समय समिति बनायी गयी उस समय तो मैं कालेजमें पढ़ता था। पीछे घरके कामका बोझ मेरे ऊपर पड़ जानेसे मुझे इतना अवकाश नहीं रहा कि इसका काम चलाया जाय, इससे इसका काम शिथिल हो गया। तीन वर्ष हुए नवम्बर १६२२ में प्रसिद्ध देशभक्त श्रीमान् जमनालालजी बजाज महाशय कलकत्ते पधारे थे। मैं उनसे मिलने गया था। वहां श्रीमान् महावीर प्रसादजी पोद्दार भी थे। हिन्दीके विषयमें बातचीत होनेपर मैंने अपने पुराने उद्देश्योंको कहा तो सभीने उन्हें पसन्द किया। मैंने बाबू महावीरप्रसादजीसे

कहा जो इस समय हिन्दी पुस्तक एजेन्सीका कार्य कर रहे थे, यदि आप हिन्दीमें उत्तम और सस्ते ग्रन्थ प्रकाशित करें तो मैं पांच हजार रुपया इस कार्य्यके लिये दे सकता हूं। उन्होंने इसको स्वीकार कर लिया। मैंने रुपये उसी दिन बाबू जमनालालजीके पास भेज दिये। किन्तु कितने ही कारणोंसे पोद्दारजीको गोरखपुर चले जाना पड़ा और कोई कार्य्य नहीं किया जा सका।

व्यापारके झंझटमें मेरे लिये यह काम करना कठिन था। इसलिये रुपये योंही पड़े रहे। पीछे मेरे चीर सहपाठी तथा मित्र बाबू गंगाप्रसादजी भोतिका एम० ए० ने हिन्दी पुस्तक भवनकी स्थापना की। मैंने उनसे इस कार्य्यको करनेका भार लेनेको कहा उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसलिये आज यह पुस्तक आपके सम्मुख उपस्थित होती है। मूल्यके विषयमें इतना लिखना उचित समझता हूं कि मेरा सिद्धान्त उत्तम कागज, उत्तम छपाई और उत्तम चित्रोंसे पुस्तकको सुसज्जित कर मूल्य जितना कम हो सके उतनाही करना है। इस पुस्तकमालामें सिर्फ कागज, छपाई और जिल्दका मूल्य पाठकोंसे लिया जायगा, लिखाई तथा चित्रोंको बनाने वगैरहका खर्च हमारे फण्डसे दे दिया जायगा। मेरी सम्मति और दूसरी पुस्तकें बड़े टाइपमें प्रकाशित करनेकी है जिससे कि पढ़नेमें सुबीता हो। पाठकोंसे निवेदन है कि उन्हें इस पुस्तकमें जो त्रुटियां नजर आवें उन्हें लिख भेजनेकी कृपा करें जिससे दूसरी पुस्तकोंमें वे दूर कर दी जायं और सर्वांगसुन्दर

और सुलभ बनाई जायं। मेरे परम मित्र बाबू प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका बी० ए०, बी० एल०, एटर्नी-ऐट-ला और बाबू गंगाप्रसादजी भोतिका एम० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थने भी समितिके ट्रस्टी बनकर उचित सम्मति आदिसे सहायता की है।

कलकत्ता
१२७, हरिसन रोड

नारायणदास बाजोरिया।

सरल शरीर विज्ञान

पहला प्रकरण—१-१३

हमारे शरीरकी रचना-(१-६) शरीरके अङ्ग या अवयव (६) खाल-चर्बी-झिल्ली नाड़ीसूत्र (७) रक्तकी नालियां—पुट्ठा—हड्डी-(८) —मज्जा—वक्षस्थल—उदर—हंसली—रीढ—वक्षोऽस्थि—पसलियां (६)—यकृत—पेट—अंतड़ियां—मूत्राशय(१०)—पित्ताशय—प्लीहा—सिर—गर्दन—ओठ या होंठ—चिबुक—मसूड़े—तालू—घाटी—खोपड़ी (११)—रीढ (१२)—हवाकी नली—अन्नकी नली—दिल—पैर (१३)

दूसरा प्रकरण—१४-१६

गति अथवा चाल—हाथका गतिका वर्णन—बाहु - प्रगण्डास्थि—प्रकोष्ठास्थि (१५) अन्तः प्रकोष्ठास्थि और प्रगण्डास्थिके जोड़का वर्णन (१६)—अस्थिबन्धन और पेशियाँ या पुट्ठे (१७) लसा या लसिका (१८)—अन्तः प्रकोष्ठास्थि और वहिः प्रकोष्ठास्थिका संबन्ध (१६)

तीसरा प्रकरण—२०-२४

गति विधि सञ्चालन तथा मांस-पेशी (२०)—मांस-पेशियोंका काम (२१)—मांस-पेशियोंकी बनावट—मांस पेशियोंका स्थान,

मांस-पेशियोंके गुण (२२)—मांस-पेशियोंके सिकुड़नेका कारण—शरीरमें दो प्रकारकी गति—उसका बर्णन (२३) सेलोंका काम (२४)

चौथा प्रकरण—२५-३१

रक्त या लोहू—रक्तका वर्णन—रङ्ग—वजन—अवस्था—गर्मी जाननेकी शक्ति—रक्तकी परीक्षा (२५)—परीक्षाका फल—रक्त-रस—जमनेपर रक्तकी दशा—रक्तके रेशे—रक्तकण—दो प्रकार—श्वेताणु—रक्ताणु (२६) रक्ताणुओंका वर्णन—संख्या—कणरञ्जक—रक्तकी ललाईके कारण—चेहरा पीला पड़नेका कारण (२७)—श्वेताणुका वर्णन संख्या—रक्तका जमना (२८)—हिलानेसे जमना रुकना—शरीरमें रक्त क्यों नहीं जमता (२९)—३०) गर्मीका न होना जमनेका कारण नहीं—उबालनेपर रक्तका जमना (३१)

पांचवां प्रकरण—३२-६०

रक्तका दौरा—शुद्ध और अशुद्ध रक्त—धमनी—शिरा—हृदय-शरीरमें स्थान—शकल—बनावट (३२-३३)—रक्तकी गतिका कारण-हृदयकी कोठरियां—दायां और बायां ग्राहक कोष्ठ—दायां और बायां क्षेपक कोष्ठ—कपाट (३४-३५)—अशुद्ध रक्तकी नलियां—उर्ध्व महाशिरा, निम्न महाशिरा (३६)—वृहद् धमनी (३७)—कपाटोंका वर्णन (३८)—हृदयका सिकुड़ना और फैलना—धड़कन (३९)—रक्तका काम (४०–४१)—हृदयकी आवाज

(४२)—रक्तका दौरा किस प्रकार होता है (४४-४८)—रक्तके सम्बन्धमें जानने योग्य बातें (४६-५०) कपाटका काम—जांच-(५१-५२)—रक्तकी नलियोंकी बनावट (५५) धमनी और नाड़ी-स्पन्दन (५६-५७)—केशिकायें—वर्णन—शकल—क्रिया (५६-६०)

छठा प्रकरण—६१-८६

स्वास लेनेकी क्रिया—स्वास लेनेकी आवश्यकता (६१)—हवाका प्रभाव—रसायनिक जांच—रक्तमें हवा (६२-६३)—फेफड़ा—शकल—रङ्ग—बनावट—शिखर—तली (६५-६७)—स्वासमार्ग—नासिका—गला—स्वरयन्त्र—टेंटुआ—वायुप्रणाली—बनावट (६८-७४)—स्वासकी क्रियाका वर्णन—फेफड़ोंका फूलना और सिकुड़ना—पसलियोंका घटना बढ़ना—सीनेकी लम्बाईका बढ़ना (७५-७७)—स्वास लेनेकी अवश्यकता—प्रमाण (७८) हवाके तत्व—उपयोगिता—आक्सिजन—नाइट्रोजन—कार्बोनिक एसिड गैस—गैसोंकी प्रकृति-रासायनिक परीक्षा (७६—८३) हवासे रक्तकी शुद्धि—फेफड़ेकी क्रिया (८४)

सातवां प्रकरण—८७-१२२

अन्नकी आवश्यकता-सेलोंको पौष्टिक पदार्थ देना—अन्नमें पौष्टिक पदार्थ-प्रोटीड—चर्बी—शक्कर—निमक—जल (८७ ८८) भोजन क्यों करते हैं—भोजनके कुछ नमूने (८६-६०) भोजन पकानेकी आवश्यकता—(६२) अन्न-मार्ग—मुंह—बनावट जीभ—दांत—तालू—कण्ठ—गांठें—अन्न—प्रणाली—स्थान—

बनावट (९३-९५)—पेट—पाकस्थली—बनावट (९६-९८) अंतड़ियां—छोटी-बड़ी-ग्राहांकुर (९९)—यकृत—पित्तस्थान (१००)—पाचन क्रियाका क्रम—लार या लावा—शक्करपर क्रिया-अन्न चबानेका प्रमाण—मुंहका काम (१०१-१०४)पेट आमाशयिक रसका बनना—पेटकी दीवालोंका सिकुड़ना-फैलना-अन्नको पीसकर रस बनाना—गोली बनकर आगे बढ़ना—पेटमें अन्न कबतक रहता है (१०५-१०७) अंतड़ियोंका वर्णन—काम—अन्नरस-मलद्वार (१०८-११०) मल—मलद्वारकी बनावट—क्रिया—दुर्गन्धि (१११-११२ —भोजन करनेका समय—प्रयोजन (११३ आत्मीकरण—एकीकरण (११४—११६)—अन्नमें स्थित भिन्न भिन्न पदार्थोंके पचनेका स्थान—अधिक शक्करसे हानि (११७-११८) भोजनका अन्तिम परिणाम (११९)

आठवां प्रकरण—१२३-१३०

मूत्राशय—मूत्राशयकी रचना—मूत्राशयका काम—मूत्रप्रणाली-उभार-अशुद्ध पदार्थोंका ग्रहण करना-मूत्रनली-मूत्रका परिणाम-जाड़ा-गर्मी-पसीनेसे मूत्रका सम्बन्ध।

नवां प्रकरण— १३१-१३८

त्वचा या चमड़ा—चमड़ेकी बनावट (१३१) चर्म—उपचर्म (१३२) चमड़ेकी गांठें (१३३)-गांठोंका काम—पसीना और तेल-(१३४—१३५) बाल—बालकी गांठें—भिन्नभिन्न प्रकारके बाल (१३५-१३६) नह या नख (१३८)

दशवां प्रकरण—१३६—१५१

मस्तिष्क—शरीरका राजा—खोपड़ी या ढकना (१४०) वृहत् और लघु मस्तिष्क—दाहिना गोलार्द्ध—बायां गोलार्द्ध—गोलार्द्ध भाग—बनावट—(१४१) वातसूत्र—नाड़ीसूत्र—नाड़ीसूत्रकी रचना—ज्ञान तन्तु—सुषुम्ना (१४२-१४४) नाड़ीसूत्रका काम—संम्वाद् ले जाना ले आना (१४५—१४६) धूसर पदार्थ—ग्रेमैटर—परावर्तित गति—(१४७)—नाक—(१४८) आंख-परदा-प्रकाश किस तरह पड़ता है—दूरकी चीज और नजदीककी वस्तुके दिखाई देनेके कारण (१४९-१५०) कान (१५१)

सरल पारिभाषिक शब्द—१५२-१५८

सरल शरीर विज्ञान

प्रथम प्रकरण

हमारे शरीरकी रचना

इस संसारमें जिस तरफ चाहे आंख उठाकर देखिये आपको दोही तरहके पदार्थ दिखाई देंगे। एक तो वे जो चल फिर और हिल डोल सकते हैं और दूसरे वे जो चल फिर तथा हिल डोल नहीं सकते। एकको चैतन्य तथा दूसरेको जड़ पदार्थ कहते हैं।

इस तरह संसारके सभी पदार्थ दो हिस्सोंमें बट गये, जड़ और चैतन्य। सम्प्रति हम जड़ पदार्थका विचार छोड़ देते हैं और केवल चैतन्य पदार्थको लेकर आगे बढ़ते हैं। परीक्षा करनेसे हमें मालूम होता है कि इस चैतन्य पदार्थके भी अनेक भेद हैं। इनमें दो प्रधान हैं। एक तो वे जो आपसे आप हिल डोल सकते हैं, जैसे, मनुष्य, पशु, पक्षी और दूसरे वे जो दूसरोंकी सहायता बिना हिल डोल नहीं सकते, जैसे, पेड़, पौधे तथा

लतादि। इस तरह चैतन्य पदार्थके भी दो भाग हुए, वनस्पति तथा प्राणी।

इस पुस्तकमें हम केवल प्राणिवर्गपर विचार करना चाहते हैं और इसलिये अन्य वर्गोंको अलग रखकर प्राणिवर्गको ही अपने सामने रखते हैं।

प्राणिवर्ग उस वर्गको कहते हैं जिसमें चेतना हो और साथ ही जो अपनेसे आप हिल डोल सके तथा अपनी क्रिया आप कर सके।

इस परिभाषाको पढ़ते ही यह प्रश्न उठता है कि प्राणिवर्गमें कौनसी ऐसी शक्ति है जिसकी सहायतासे वह अन्य पदार्थों और वर्गोंसे विशेषता रखता है तथा उस विशेषताका ज्ञान हमें क्योंकर मिलता है।

पहली विशेषता तो यह है कि प्राणिवर्गका प्रत्येक जीव आपसे आप हिल डोल सकता है। उसे किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं रहती। यदि उसे किसीकी सहायताकी आवश्यकता पड़ती है तो या तो वह प्राणिवर्गका नहीं है या प्राणिवर्गका होता हुआ भी जीवहीन है। उदाहरणके लिये किसी पेड़के पत्तेको ले लीजिये। उसे पेड़से तोड़कर अपने घरमें किसी ताखपर रख दीजिये। जब कभी आप देखियेगा पत्ता वहीं पड़ा मिलेगा। यदि किसी दिन पत्ता वहां नहीं दिखाई देता तो निश्चय जानिये कि या तो हवा पत्तेको उड़ा ले गई या

घरके किसी व्यक्तिने पत्तेको उठाकर कहीं रख दिया। पर यदि चूहेको पकड़कर आप उसी ताखपर रख दें तो आप देखेंगे कि आपके हाथसे वह अलग हुआ कि रंग भागा। वह क्षण-भरके लिये भी स्थिर नहीं रह सकता। पर यदि वही चूहा जमीनपर या और कहीं रख देनेके बाद भी न हिले डोले तो समझ लीजिये कि वह मर गया है, उसमें जान नहीं रह गई है।

पर आजकल बाजारमें रेलगाड़ी आदि अनेक तरहके खिलौने बिकते हैं जो आपसे आप चलते हैं। रेलगाड़ीमें ताली दे दीजिये और वह दौड़ पड़ेगी। पर जहां ताली खतम हुई वहीं वह रुक जायगी। फिर उसे आगे बढ़नेका साहस नहीं। यदि आप उसे फिर दौड़ाना चाहते हैं ता फिर ताली भरिये और वह दौड़ने लगेगी। पर जीवधारी पदार्थके लिये इस तरह ताली भरनेकी आवश्यकता कभी भी नहीं पड़ती।

दूसरी विशेषता यह है कि हममें गर्मी भरी हुई है। भीषण-से भीषण जाड़ा पड़ रहा है, सर्दीके मारे हाथ पैर ठिठुरे जा रहे हैं, किसी वस्तुको छूना कठिन है, इस अवस्थामें भी आपके शरीरमें गर्मी है। आजमाइशके लिये थोड़ी दूर दौड़ आइये और परीक्षा कीजिये या किसी ऐसे कपड़ेको अपने बदनपर डाल लीजिये जो ठण्ढा हो गया है। थोड़ी देरके बाद कपड़ा आपको गरम मालूम देगा। हम कपड़ा इसलिये नहीं पहनते या ओढ़ते कि हम अपने बदनको गर्मी पहुंचावें। हमारा

वास्तविक उद्देश्य उस गर्मीकी रक्षा है जो हमारे शरीरमें स्वतः मौजूद है। हमारे शरीरमें एक तरहकी अग्नि है जो हमें भी गर्म रखती है और हमारे आस पासके उन पदार्थोंको—जो हमारे संसर्गमें आजाते हैं गर्म रखती है।

इस तरह सभी सजीव प्राणी चाहे वे मनुष्य हों, पशु हों या पक्षी हों थोड़े बहुत गर्म अवश्य रहते हैं। कितनोंमें गर्मी अधिक रहती है और कितनोंमें कम। कितने जानवरों—जैसे मेढक, कछुआ और मगरमें तो इतनी कम गर्मी रहती है कि साधारण स्पर्शसे मालूम ही नहीं हो सकता कि इनमें गर्मी है, पर यदि यन्त्र—थर्मामीटरसे—परीक्षा कीजिये तो दूसरे ही क्षण आपको विदित हो जायगा कि इनमें भी गर्मी है। पर यह गर्मी तभीतक रहती है जबतक प्राणी जीवित रहता है। उसके मरनेके साथही शरीरकी गर्मी भी गायब हो जाती है। किसी प्राणीका मरना जीना भी हम इसी तरह जानते हैं। उसे संज्ञाहीन तथा हिलने डोलते न देखकर हम तुरत उसकी गर्मीकी परीक्षा करने लग जाते हैं और जब उसका शरीर गर्म नहीं मालूम होता तो हम कहते हैं कि वह प्राणी मर गया। इससे यह विदित हुआ कि मरने और जीनेमें गर्मीका होना या न होना एक प्रधान कारण है।

इन दोनों विशेषताओंकी परीक्षा करनेसे हमें प्राणिवर्गके सम्बन्धमें इतनी बातें मालूम हुईं—(१) उसमें गर्मी है। (२) वह आपसे आप चल फिर सकता है। (३) आपसे आप चलने फिरनेके लिये यह गर्मी आवश्यक है अर्थात् हम लोग तभीतक

चल फिर सकते हैं जबतक यह गर्मी मौजूद रहती है। (४) इस गर्मीका यही प्रयोजन है कि हम लोग आसानीसे हिल डोल सकें।

हमने ऊपर जो परिणाम निकाला है वह कदाचित स्पष्ट न हो और पढ़नेवालोंको हमारा अभिप्राय समझनेमें कठिनाई प्रतीत हो इससे हम दो एक और उदाहरण देकर अपना अभिप्राय स्पष्ट कर देना चाहते हैं। रेलगाड़ीके इञ्जनको ले लीजिये। इसमें जीव नहीं है पर गर्मी है और आपसे आप चलता है तथा तभीतक चलता है जबतक गर्म रहता है। इसे चलानेके लिये हमें क्या करना पड़ता है। भट्ठे में हम पत्थरका कोयला जलाते हैं। इससे हौजका पानी खौलने लगता है। पानीसे भाफ बन बनकर उठता है और बाहर निकलनेके लिये जोर मारता है। इधर साराका सारा इञ्जन गर्म हो उठता है। भाफके जोरसे पिस्टन चल पड़ता है। जबतक कोयला जलता रहेगा इञ्जन चला करेगा। कोयला समाप्त हुआ और गर्मी गायब हुई कि इञ्जनकी गति भी रुकी।

ठीक यही अवस्था हमारे शरीरकी है। हमारे शरीरको गर्म रखने और चलानेके लिये भी शरीरके भीतर बराबर आग जला करती है और उस आगको गर्म रखनेके लिये हमें भी बराबर ईंधन झोंकना पड़ता है। आखिर हमारे भोजन करनेका क्या अभिप्राय है? हमारा भोजन भी एक प्रकारका, ईंधन ही है। यदि हम दो चार दिन तक भोजन न करें तो हमारी

अग्नि मन्द पड़ जाती है, हम कमजोर होजाते हैं, हमारे शरीरमें इतनी गर्मी नहीं रह जाती कि हम चल फिर सकें। इतनी समानताके होते हुए भी रेलगाड़ियोंके इञ्जनों और हमारे शरीरमें बड़ा भारी अन्तर है। उस अन्तरको जिस शास्त्र द्वारा हम जानते हैं उसे हम *शरीर विज्ञान* कहते हैं। शरीर विज्ञान हमें बतलाता है कि हम जो अन्न खाते हैं वह कोयलेका काम किस तरह देता है, अन्न और पानी दोनों साथ मिलकर शरीरकी अग्निको किस तरह बढ़ाते हैं और वे फिर शरीरमें किस तरह समा जाते हैं, क्या कारण है कि हम अपने शरीरको अपनी इच्छाके अनुसार जिधर चाहें, जिस तरह चाहें, जितना चाहें, चला फिरा सकते हैं।

इसके जाननेके पहले हमें अपने शरीरके प्रत्येक अङ्ग या अवयवका ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

हमारे शरीरके अङ्ग या अवयव

घरोंमें छोटे बच्चे बहुधा गीली मिट्टी लेकर खिलौना बनाते हैं। कोई चूहा बनाता है, कोई खरगोश बनाता है और कोई कुछ बनाता है। बच्चे मिट्टीका एक लोंदा लेकर उसे पीटते हैं और पीठ तथा पेट बनाकर उसे धड़की जगह खड़ा कर देते हैं और उसके सहारेके लिये दो और मिट्टीके टुकड़े उसके नीचे खड़े कर देते हैं जिन्हें वे पैर कहते हैं। ऊपरकी तरफ दो टुकड़े लगा

देते हैं और उन्हें हाथ कहते हैं। सबसे ऊपर एक गोल लोंदा रख देते हैं और उसे सिर कहते हैं। इस तरह बच्चे हर घड़ीमें आदमीकी शकल बनाते और बिगाड़ते हैं।

पर शरीरकी बनावटमें केवल ऐसी ही बातें नहीं रहतीं। प्रत्येक अङ्गकी बनावट भिन्न भिन्न रहती है। जिस अङ्गको जितना काम करना पड़ता है उसीके अनुसार उसकी बनावट भी होती है। मान लीजिये कि हम हाथकी बनावट जानना चाहते हैं। किसी मुर्देके शरीरसे हाथ काटकर सामने रखिये। सबसे ऊपर हमें बालदार चमड़ा दिखाई देगा। इसे *खाल* कहते हैं। इसे चाकू या अन्य किसी औजारसे काटिये और धीरे धीरे इस-को अलग कीजिये। (जीवित अवस्थामें इस खालसे रक्त नि-कलता है।) अलग करनेपर हमें मालूम होता है कि खाल नीचेके पदार्थमें सटी रहती है। खालके हटा लेनेपर *चर्वी* दिखलाई देगी। यह पीली और चिकनी होती है। जो प्राणी जितना ही मोटा होगा उसमें उतनी ही अधिक चर्बी होगी। चर्बीके ऊपर बड़ीही पतली और चमकीली चादर रहती है जो चर्बीको ढके रहती है और जिसमें चर्बीकी गांठें फंसी रहती हैं। इसे *झिल्ली* कहते हैं। इसी झिल्लीमें सूतकी भांति पतले और सफेद तन्तु दिखलाई देंगे। ये इतने चिमड़े होते हैं कि खींचनेसे जल्दी टूटते नहीं। इन्हें *नाड़ीसूत्र* कहते हैं। इन नाड़ीसूत्रोंका जन्म मस्तिष्क-से होता है। ये ऊपरसे नीचेकी ओर जालकी भांति चमड़ेमें फैले हैं। खाल और चर्बीके बीचमें रंग विरंगी

नालियां दिखलाई देती हैं। ये भीतरसे खोखली दिखलाई देंगी। जीवित अवस्थामें इनमें रुधिर बहता है। इन्हें *रक्तकी नालियां* कहते हैं [देखो चित्र नं० ३]। ये नालियां दो तरहकी होती हैं एक लाल और दूसरी नीली। पहलीमें पवित्र रक्त बहता है और दूसरीमें अपवित्र। आगे चलकर इसका विस्तृत विवरण दिया जायगा। इस झिल्ली और चर्बीके हटा देनेपर हमें मांसपिण्ड दिखाई देगा। इस मांसपिण्डको *पुट्ठा* कहते हैं [देखो चित्र नं० १]। यह छोटे छोटे खण्डोंमें बटा हुआ है और पतली झिल्लीके सहारे एक दूसरेसे बंधा है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई भिन्न भिन्न तरहकी होती है। प्रत्येक अङ्गमें ये लम्बानमें पाये जाते हैं। इनके बीचमें झिल्लियां होती हैं। कहीं कहीं इनमें चर्बी भी पाई जाती है। पुट्ठे में भी रक्तकी नाड़ियां और नाड़ीसूत्र होते हैं। ध्यानसे देखनेसे मालूम होगा कि ये बाहरसे भीतर जाते हैं और भीतरसे बाहर आते हैं। पुट्ठा दोनों सिरोंपर बंधा रहता है और बीचमें लुञ्ज या ढीला रहता है। पर इन्हें काटकर हटाना सहज नहीं है। आपसमें ये इस तरह जुटे रहते हैं कि इनको काटकर हटानेमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। मांस या पुट्ठेको काटकर हटाते ही हमें उसके नीचे कड़ी चीज मिलती है। यह इतनी कड़ी होती है कि मांस या चर्बीकी तरह हम इसे चाकूसे नहीं काट सकते। इसे *हड्डी* कहते हैं [देखो चित्र नं० २]। हड्डीके ऊपर एक झिल्ली लिपटी रहती है। हड्डीको आरीसे काटकर

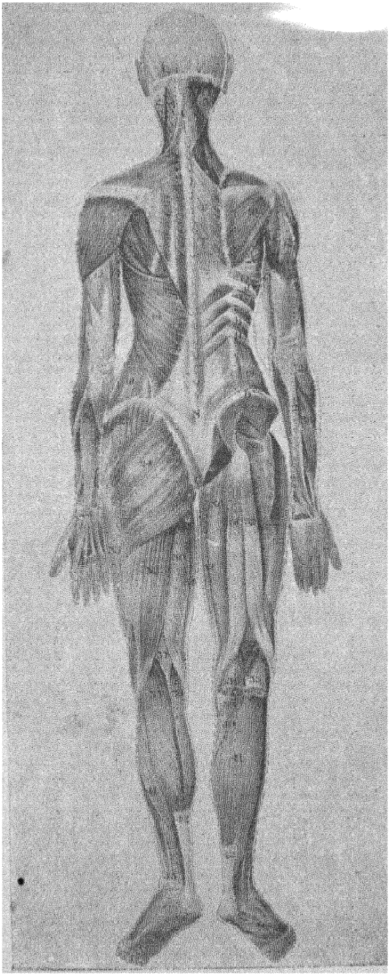

चित्र नं० १

इस चित्रमें यह दिखलाया गया है कि शरीर भरमें पुट्ठे किस तरह बण्डलोंकी भांति खिचे रहते हैं।

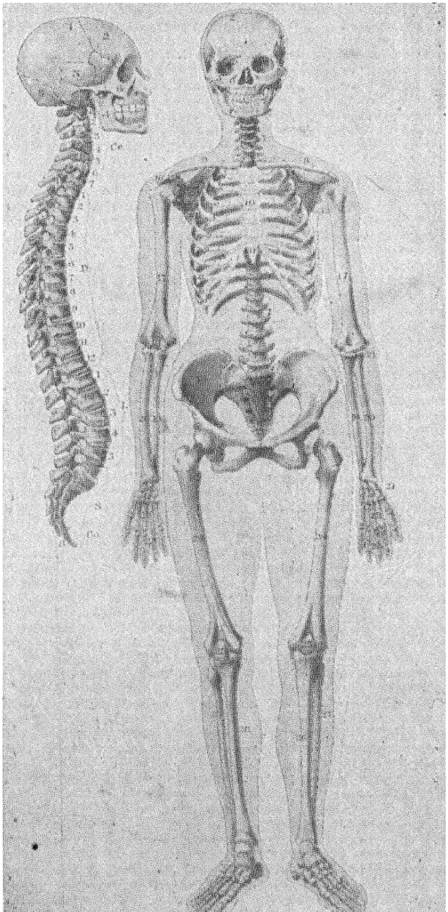

(क) (ख)

चित्र नं० २.

मनुष्यकी ठठरीका चित्र (क) में रीढ़ और खोपड़ी दिखायी गई है
और ख) में शरीरकी सभी हड्डियां है।

चित्र नं० ३

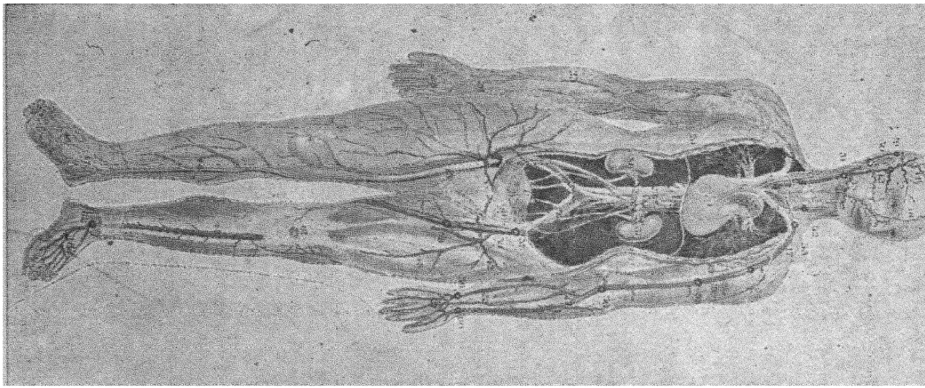

इस चित्रमें रक्तकी नलियोंका जाल दिखलाया गया है कि रक्तकी नलियां हृदयसे किस भांति निकलकर सारे शरीरमें फैलती हैं और फिर आकर हृदयमें प्रवेश करती हैं।

दो टुकड़े कीजिये। बीचसे वह खोखली दिखाई देगी। इस खोखलेमें चिकना, गुलाबी, लसदार और ढीला गुदा भरा रहता है। इसे *मज्जा* कहते हैं।

बाहुकी परीक्षा करनेके बाद धड़की परीक्षा कीजिये। धड़के दो भाग होते हैं। ऊपरके भागको *वक्षःस्थल* या छाती कहते हैं और नीचेके भागको *उदर* कहते हैं [देखो चित्र नं० ४]। छातीको दाहिनी और बाईं ओर दो भुजायें हैं। ऊपरकी ओर *हंसली* नामकी हड्डी है। जिस मनुष्यका स्वास्थ्य अच्छा रहता है तथा शरीर भरा रहता है उसकी हंसली मांसपिण्डमें छिपी रहती है पर दुबले पतले आदमीकी हंसली दूरसे ही दिखाई देती है [देखो चित्र नं० २]। हंसलीके नीचे कुछ दूरीपर दोनों ओर दो स्तन होते हैं। स्त्रियोंमें ये स्तन बड़े होते हैं और इनमें दूध बनता है। छातीके बीचोंबीच ऊपरसे नीचेतक आगे और पीछे (पीठकी ओर) दो हड्डियां गई हैं। पीठकी हड्डीका नाम *रीढ़* है और सामनेकी हड्डीका नाम *वक्षोऽस्थि* है [देखो चित्र नं० २]। इन दोनों हड्डियोंसे जुटी हुई बारह पतली, चिपटी और टेढ़ी हड्डियां हैं जो दीवारकी तरह खड़ी हैं और भीतरके अङ्गोंकी रक्षा करती हैं। इन्हें *पसलियां* कहते हैं [देखो चित्र नं० २]। इन पसलियोंके नीचे दोनों तरफ दो फेफड़े होते हैं और बाईं ओर हृदय या दिल रहता है [देखो चित्र नं० ४]। ये दो प्रधान अङ्ग हैं। इनके अतिरिक्त रक्तकी नालियां, अन्नकी नालियां आदि छोटे

छोटे अङ्ग होते हैं। छातीके चीरनेपर बाहुकी भांति चर्वी, मांसपिण्ड, झिल्ली तथा रक्तकी नालियां और नाड़ीसूत्र यहां भी मिलेंगे।

अब उदरको चीरिये और ऊपरके चमड़े तथा झिल्ली और मांसपिण्डको निकालकर अलग कीजिये। आपको विदित होगा कि बाहुकी तरह यह ठोस नहीं है बल्कि इसके भीतर एक बड़ा भारी गड्ढा है। यह गड्ढा विविध प्रकारकी वस्तुओंसे भरा है [देखो चित्र नं० ४]। इसमें सबसे ऊपर जमें खूनके रङ्गका मोटा लोथ दिखाई देगा। इस लोथने इस गड्ढेके ऊपरी भागको एक तरफसे दूसरी तरफ तक भर रखा है। इसे *यकृत* (liver) कहते हैं। यकृतके ठीक नीचे *पेट* होता है। जो अन्न हम खाते हैं अथवा जो पानी हम पीते हैं वह सब अन्नकी नलीद्वारा मुंहसे होकर इसी पेटमें आता है और वहींसे पाचन क्रिया आरम्भ होती है। उदरके नीचे *अतड़ियां* रहती हैं। ये लम्बी और आरम्भमें पतली होती हैं और पीछे मोटी होती जाती है। ये गेडुरीकी तरह लिपटी पड़ी रहती हैं और पेटके नीचेके गड्ढेको भर देती हैं। अतड़ियां ऊपरसे देखनेमें गुरियाकी भांति गठीली और चिकनी होती हैं। उदरसे निकलकर अन्न इनमें आता है और इनके द्वारा होता हुआ बाहर निकल जाता है। अतड़ियोंको निकालकर अलग कीजिये। आप देखियेगा कि इनके नीचे दोनों तरफ हलके लाल तथा भूरे रङ्गके दो गोल थैले लटक रहे हैं। इन थैलोंको *मूत्राशय* कहते हैं। बायीं ओरसे पेटके ऊपर दाहिनी

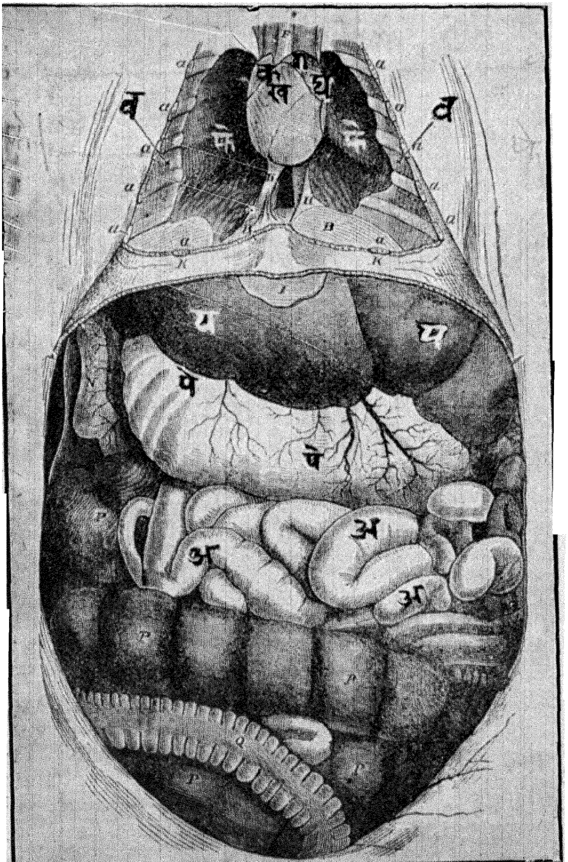

चित्र नं० ४

(व) वक्षःस्थल (क, ख, ग, घ,) हृदयकी चारों कोठरियां (फे) दोनों फेफड़े ।

उदर—(य) यकृत, (पे) पेट, (अ) छोटी और बड़ी अंतड़ियां ।

चित्र नं० ६

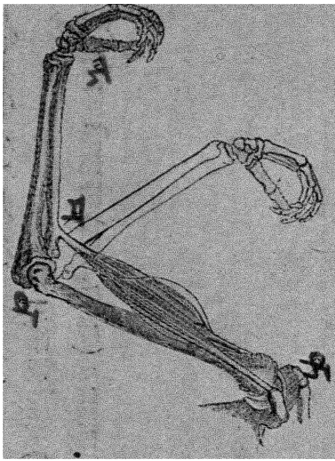

चित्र नं० ५

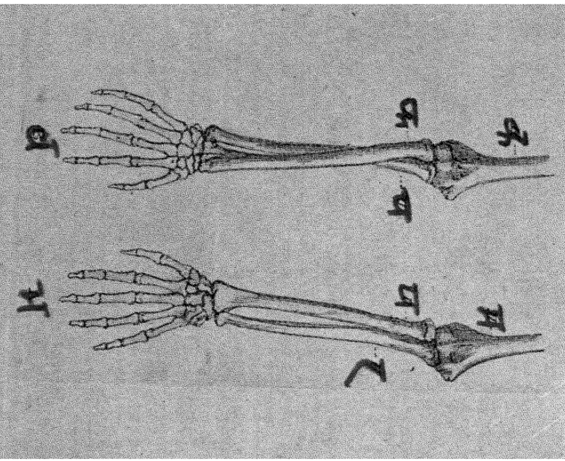

चित्र ५(क,म) प्रगण्डास्थि (प) वहिः प्रकोष्ठास्थि (र) अन्तः प्रकोष्ठास्थि (ब,भ) हथेलियोंके पोर

चित्र ६ (म, क) पुट्ठेका जोड़ (फ, क) फैला हुआ हाथ (म, ब) पुट्ठेके तनावसे तना हुआ हाथ

ओर गई हुई एक लम्बी हाथकी भांति वस्तु दिखाई देगी। इसका अन्तिम भाग मोटा और गठीला होता है। यह पित्त-स्थान है। इसे *पित्ताशय* कहते हैं। इसकी पूंछके पास पिलही या प्रीस है [देखो चित्र नं० २]।

अब शरीरके ऊपरके भागको उठाइये। इसके भी दो भाग हैं। सबसे ऊपरी भागको *सिर* कहते हैं। इसमें खोपड़ी सबसे प्रधान विषय है। नीचेके भागको *गर्दन* कहते हैं। ऊपर बालदार खोपड़ी, सामने *ललाट*, दोनों बगल दो कान, ललाटके नीचे बीचमें दो छेदवाला नाक, नाकके नीचे मुंह, दोनों तरफ गाल, इन सबोंका समवाय या एक नाम *सिर* है। मुंहके दो हिस्से होते हैं। ऊपरका हिस्सा *ओठ* (होठ) और नीचेका हिस्सा *हनु* कहलाता है। हनुके नीचे *चिबुक* या टुड्डी होती है। मुंहके भीतर ३२ दांत जबड़ोंमें जमे रहते हैं। इनका विस्तृत विवरण आगे दिया जायगा। जिसमेंसे दांत निकलते हैं उन्हें *मसूड़े* भी कहते हैं। दांतोंके ऊपर छतकी तरह उन्हें ढके हुए *तालू* होता है। तालूका अगला भाग कड़ा और पिछला भाग मुलायम या नरम होता है। मुंहका छेद भीतर जाकर जहां संकड़ा होता है वहां तालूका अन्त होता है। उस जगहपर चमड़े-का एक हिस्सा लटकता दिखाई देता है। उसे ललरी या *घाटी* कहते हैं। दांतोंके बीचमें नीचेकी तरफ जीभ होती है। सिरका ऊपरी भाग *खोपड़ी* कहलाता है। इसके भीतर मस्तिष्क है। मस्तिष्क अतिशय कोमल और पिलपिला होता है। साधारण

धक्के से भी उसे भीषण क्षति पहुंच सकती है। इसीलिये यह बालदार खोपड़ी ढालकी भांति उसकी रक्षा किया करती है। इसी मस्तिष्कसे ज्ञानतन्तु या नाड़ीसूत्रका उद्गम होता है जो शरीरभरमें फैले हैं। जहां मस्तिष्कका अन्त होता है—अर्थात् पीठकी तरफ निचले भागमें—वहींसे पीठके बीचोंबीच होता हुआ एक पोपला हड्डियोंका सिलसिला चला गया है। इसे रीढ़ कहते हैं [देखो चित्र नं० २]। यही ज्ञानतन्तुओं या नाड़ीसूत्रोंका मार्ग है। रीढ़की ये हड्डियां आपसमें एक दूसरेसे इस तरह जुटी रहती हैं कि प्रत्येक दो दो हड्डियोंके बीचमें इतना काफी सूराख रहता है कि नाड़ीसूत्रका एक बण्डल बाहर निकाल सके।

बाहरसे देखनेमें गर्दनमें क्या है इसका पता नहीं लग सकता। एक पेड़के धड़की तरह निष्प्रयोजन खड़ा रहता है। पर इसको चीरकर देखनेसे विदित होगा कि यह भी शरीरका एक प्रधान भाग है और बड़े कामका है। सभी मुख्य मुख्य नालियां इसीसे होकर गई हैं। अन्ननाली, स्वरनाली, वायुनाली, ज्ञानतन्तुनाली सभी इसीसे होकर जाती हैं।

यह तो शरीरके प्रत्येक अवयवों अथवा अङ्गोंका अलग अलग वर्णन हुआ। यहींपर संक्षिप्त विवरणमें यह भी दिखला देना उचित होगा कि प्रत्येक अंगोंका आपसमें किस तरहका संबन्ध है।

सबसे ऊपर सिर है। सिरका ऊपरी भाग खोपड़ी है।

खोपड़ीके नीचे मस्तिष्क है। इसके नीचे हड्डियोंकी एक तह है और वहींसे गर्दन आरम्भ हो जाता है। गर्दनके भीतरी भागको गला कहते हैं। यहीं मुंहका अन्त होता है और यहींसे दो नलियां नीचेकी ओर चलती है। एकको *हवाकी नली* कहते है और दूसरीको *अन्नकी नली* कहते हैं। ये नलियां सीधी नीचेको जाती हैं। छातीके पास जाकर हवाकी नलीके दो भाग हो जाते हैं और दोनों दोनों तरफके फेफड़ोंसे जाकर मिल जाते हैं। जहां पेटका अन्त होता है वहांसे अतड़ियोंका आरम्भ होता है। इन अतड़ियोंकी समाप्ति गुदामें होती है।

इस तरहसे अन्नकी यह नली मुंहसे आरम्भ होकर धड़को पार करती सीधी नीचेको चली जाती है। बीचमें कहीं और नहीं खुलती। फेफड़ेके ठीक ऊपर बायीं ओर झुका हुआ *हृदय* या *दिल* है। इसकी भी नलियां हैं जो अपवित्र रक्तको सारे शरीरसे तथा हृदयसे फेफड़ोंमें और पवित्र रक्तको फेफड़ोंसे हृदयमें तथा सारे शरीरमें ले जाती हैं। धड़के निचले भागमें यकृत, मूत्राशय, प्लीहा तथा पित्ताशय हैं। नीचेकी ओर इनको ठीक यथास्थानपर रखनेके लिये दो खम्भे हैं जिन्हें *पैर* कहते हैं। धड़के ऊपरकी ओर दो भुजायें हैं जो गर्दनके पास मांसपेशियों-द्वारा धड़से जुटी हैं। धड़में सामनेकी ओर धनुषके आकारकी पसलियां हैं जो प्रत्येक सांसके साथ नीचेसे ऊपरको उठा करती हैं।

दूसरा प्रकरण

गति अथवा चाल

शरीरकी रचनाके सम्बन्धमें साधारण बातें जान लेनेके बाद अब आवश्यकता इस बातकी प्रतीत होती है कि हम इस विषयपर साधारण प्रकाश डालें कि हमारे अङ्गोंमें गति या चाल किस तरह होती है। हम अपने शरीरके भिन्न भिन्न अङ्गोंको एक ही प्रकारसे किस तरह चला सकते हैं और दूसरी तरह क्यों नहीं चला सकते। उदाहरणके लिये हाथकी गतिकी जांच कीजिये [देखो चित्र नं० ५]।

हाथको सीधा फैला दीजिये जिससे हथेली ऊपरकी तरफ हो। अब इसे मोड़नेका प्रयत्न कीजिये। आप देखेंगे कि हाथ बीचसे मुड़ने लगता है और इतना अधिक मुड़ जाता है कि अंगुलियां गर्दनके पास जाकर सट जाती हैं। फिर हाथको पहलेकी भांति सीधा कीजिये और उलटकर फैलाइये, जिससे हथेली उलटी पड़े। फिर हाथको मोड़नेकी चेष्टा कीजिये। आप देखेंगे कि आपका सारा प्रयत्न व्यर्थ जाता है। हाथ जरा भी नहीं मुड़ता। इसका क्या कारण है।

परीक्षाके लिये किसी मुर्देका हाथ सामने रखिये और चाकू तथा कैंचीकी सहायतासे ऊपरका चमड़ा, भीतरकी चर्बी, मांस-

पिण्ड, रक्तकी नलियां, ज्ञानतन्तु आदि सबको धीरे धीरे इस तरह हटाइये कि हड्डीपर जरा भी ऑरेंच न आवे और हड्डी साफ हो जाय। आपको मालूम होगा कि हाथ या भुजा दो भागोंमें बटी है। ऊपरका भाग, जिसे बाहु कहते हैं, एक हड्डी-का बना है। यह हड्डी ऊपर कन्धेकी हड्डीसे जुटी है और नीचे केहुनीके पास भुजाके निचले हिस्सेका हड्डियोंसे जुटी है। निचले हिस्सेमें दो हड्डियां होती हैं। बाहरकी हड्डी जरा बड़ी होती है और भीतरकी जरा छोटी। कलाईकी तरफ यह बड़ी हड्डी पतली होती है पर केहुनीकी ओर यह मोटी होती है। ऊपरके हिस्से अर्थात् बाहुकी हड्डीको *प्रगण्डास्थि* कहते हैं। नीचेकी हड्डीको *प्रकोष्ठास्थि* कहते हैं। बाहरकी ओर जो मोटी हड्डी है उसे *बाहि: प्रकोष्ठास्थि* कहते हैं और भीतरकी ओर जो पतली हड्डी है उसे *अन्त: प्रकोष्ठास्थि* कहते हैं। केहुनीके पास जहां दोनों हड्डियां अर्थात् प्रगण्डास्थि और प्रकोष्ठास्थि मिलती हैं वहांकी बनावटको गौरसे देखिये। प्रगण्डास्थिके अन्तमें एक गोलाकार सकल बन जाती है और अन्त: प्रकोष्ठास्थिके सिरेपर एक गड्ढा होता है जिसमें प्रगण्डास्थि आकर जम जाती है। इस गड्ढेकी तथा प्रगण्डास्थिके सिरेकी बनावट इस तरहकी होती है कि यह सिरा गड्ढेमें बड़ी आसानीके साथ चक्कर मार सकता है और नीचेसे ऊपर या बाहरसे भीतरकी ओर घुमानेमें केवल एक ही तरहकी गति या चाल कर सकता है अर्थात पीछेकी ओर नहीं मुड़ सकता। साथ ही बगलकी गति भी

इसमेंसे नहीं निकल सकती क्योंकि प्रगण्डास्थि अन्तः प्रकोष्ठास्थिके गड्ढेमें जाकर बेतरह सट जाती है और हिलने डोलने नहीं पाती। इसकी चालको भली भांति समझनेके लिये किसी घरके दरवाजेको देखिये। जिस तरह शिकञ्जे पर दरवाजा एक ही चाल देता है अर्थात् सिर्फ आगेकी तरफ। यदि आप उसे बगलकी ओर या पीछेकी ओर मोड़िये तो वह नहीं हिल सकता और अधिक जोर दीजिये तो वह टूट जायगा। ठीक यही हाल इन हाथकी हड्डियोंका है।

अन्तःप्रकोष्ठास्थिके गड्ढेमें एक खूबी और भी है। वह यह है कि गड्ढेका कोर चारों ओर समान नहीं है बल्कि पीछेकी ओर वह उभरा हुआ है। इसलिये यदि प्रगण्डास्थिको पीछेकी ओर मोड़िये तो यह उभरा हुआ कोर प्रगण्डास्थिके उभरे हिस्सेको इस तरह जकड़ लेता है कि वह तिलभर भी नहीं मुड़ सकता।

इतने वर्णनसे मालूम हुआ कि हाथके पूरे विस्तारके लिये दोनों हड्डियां अर्थात् प्रगण्डास्थि और अन्तः प्रकोष्ठास्थि एक साथ जुटकर काम करती हैं। नहीं तो शरीरकी ठठरीमें ये दो भिन्न हड्डियां हैं। एकसे दूसरीका सम्बन्ध नहीं है। दोनों अलग अलग हैं। इससे यह प्रगट हुआ कि इनको एक साथ रखनेके लिये किसी तरहके बन्धनकी आवश्यकता अवश्य पड़ती होगी अर्थात् कोई बाहरी उपकरण इन दोनोंको बांधकर एकमें रखना है, क्योंकि यदि कोई बाहरी साधन इन्हें इस तरह बांधकर

न रखे तो ये तुरन्त ही एक दूसरेसे अलग हो जायं और हाथका काम रुक जाय।

इन दोनों हड्डियोंको यथास्थान रखने तथा इनकी गतिको ठीक तरहसे चलानेके लिये प्रकृतिने एक बन्धन बना दिया है और वही बन्धन इन दोनों हड्डियोंको बांधकर ठिकाने रखता है तथा इनकी गतिका भी सञ्चालन करता है। किसी ताजे मरे मुर्देके हाथको काटकर धड़से अलग कीजिये। चाकू तथा कैंचीकी सहायतासे ऊपरका चमड़ा अलग कीजिये। मांसपिण्ड-को सावधानीके साथ उठाइये जिससे हड्डीपरकी और वस्तुयें अपने स्थानपर ज्योंकी त्यों पड़ी रहें। अब आपको साफ साफ दिखलाई देगा कि ये हड्डियां किस प्रकार थमी हैं। आप देखेंगे कि ऊपर चारों ओर रेशेदार वस्तुका आंटीकी भांति एक गुच्छा चारों तरफ घूमा है, जिसने दोनों सिरोंको कसकर पकड़ रखता है और उसी तरहके रेशेकी दूसरी आंटीके सामनेकी ओर प्रगण्डास्थि तथा अन्तःप्रकोष्ठास्थिका पकड़ रखा है जो ननाव-पर चलती है। इस रेशेदार आंटीको *अस्थि-बन्धन* कहते हैं। यह अस्थिबन्धन रबरकी तरह लचीला और घटने-बढ़नेवाला होता है। निर्जीव हो जानेपर यह सूखकर काठकी तरह हो जाता है और इसकी गति बन्द हो जाती है। इसलिये मुर्देकी परीक्षा करते समय इसकी गतिका पता नहीं लग सकता। यही कारण है कि आदमीके मर जानेपर उसके हाथ पैर इतने कड़े हो जाते हैं कि फिर हिलाये डोलाये नहीं जा सकते। [देखो चित्र नं० ६]।

आप जानते हैं कि यदि दो रूखी चीजें एक दूसरेसे रगड़ खाती रहें तो वे घिस जायंगी और धीरे धीरे बेकाम हो जायंगी। इञ्जनके पुर्जोंको ले लीजिये। यदि पुर्जोंमें लगातार तेल न दिया जाय तो वे दो चार दिनमें ही रगड़ खाकर बेकाम हो जायंगे और इञ्जन बैठ जायगा। ठीक यही अवस्था इस शरीरके अङ्गोंकी है। इसलिये प्रकृतिने प्रत्येक जोड़पर तेलके स्थानपर चिकने पदार्थ इस प्रकारसे बना दिये हैं जो सदा ताजे रहते हैं और हड्डियोंको रगड़ खाकर घिसने नहीं देते। यदि आप ताजे मुर्देका हाथ चीरकर देखेंगे और प्रगण्डास्थि तथा अन्तःप्रकोष्ठास्थिके अस्थि-बन्धन काटकर एक दूसरेसे अलग करेंगे तो आप देखेंगे कि दोनों हड्डियां जहां जुटती हैं वहांपर दोनोंके बीचमें किसी चर्बीदार पदार्थकी एक पतली गद्दी है। इसीको *कार्टिलेज* कहते हैं। इसीका फल है कि रगड़ खाकर दोनों हड्डियां घिसने नहीं पातीं और चिकनाहटके कारण इनकी गति भी ठीक रहती है। इन हड्डियोंके ऊपर जो मज्जाका अंश रहता है उसमेंसे पानीसा एक तेलहुस पदार्थ हमेशा बह बहकर इस गद्दीको तर करता रहता है।

यहांपर हमने केवल उदाहरणके लिये एक जोड़का वर्णन कर दिया है। इसी प्रकारके अनेक जोड़ हमारे शरीरमें हैं। हांथमें ही दो जोड़ और हैं। एक जोड़ ऊपर कन्धेमें है और दूसरा जोड़ नीचे कलाईमें है। इसके अतिरिक्त हथेलीकी अंगुलियों तथा उनके प्रत्येक पोरके जोड़ हैं। पैरमें भी उसी प्रकार

तीन जोड़ हैं। पहला जोड़ ऊपर जंघाका है, दूसरा जोड़ घुटनेका है, तीसरा जोड़ नीचे नली या एड़ीके पासका है। इन सबोंमे कोई विशेष फर्क नहीं है। हड्डियोंकी बनावट एक तरहकी है। बन्धन तथा बन्धनके सामान सभी एक तरहके हैं। यदि कोई भेद है तो केवल शकलमें है। अर्थात् हड्डियोंका सिर ठीक उसी प्रकारका नहीं है जिस प्रकार प्रगण्डास्थिका है। इसलिये इस छोटीसी पुस्तकमें इन सबोंका अतिविस्तृत विवरण देना उचित नहीं प्रतीत होता। केवल इतनाही लिख देना काफी होगा कि दोनों हड्डियां आपसमें आकर मिल जाती हैं। अस्थिबन्धन उन्हें लपेटकर बांध रखता है, कार्टिलेज जोड़को लगातार तर करता रहता है और रस निकल निकलकर कार्टिलेजकी गद्दीको सूखने नहीं देता।

यहींपर एक बात और लिख देना चाहते हैं। हाथके नीचेके भागकी हड्डी अर्थात् बहिःप्रकोष्ठास्थिका निर्माण विचित्र तरहसे हुआ है। प्रगण्डास्थिसे उसका सम्बन्ध अवश्य है। प्रगण्डास्थि अन्तःप्रकोष्ठास्थिकी तरह बहिःप्रकोष्ठास्थिपर भी उसी तरह हिलती डोलती है पर उसका सम्बन्ध प्रगण्डास्थिसे सीधा नहीं है। हम पहले लिख चुके हैं कि बहिःप्रकोष्ठास्थि अन्तःप्रकोष्ठास्थिसे कुछ छोटी है और नीचेकी तरफ वह अन्तःप्रकोष्ठास्थिसे ही जुटी है। बस, केवलमात्र यही विशेषता है, नहीं तो अन्य सब बातें उसी तरहकी हैं।

तीसरा प्रकरण

गतिविधि संचालन तथा मांसपेशी

पिछले प्रकरणमें हमने यह दिखलानेका यत्न किया है कि हमारे शरीरके भिन्न भिन्न अङ्ग किस प्रकार हिलते डोलते हैं। इसके समझानेमें हमने हड्डियोंकी रचना तथा परस्पर सम्बन्धका भी दिग्दर्शन कराया है। इस प्रकरणमें हम यह दिखलानेका यत्न करेंगे कि शरीरके विविध अङ्गोंकी इस गतिका सञ्चालन किस प्रकार होता है। कौनसी वस्तु है जो एक ही तरहकी गति होने देती है और दूसरी तरहकी गति नहीं होने देती। जिस वस्तुके द्वारा हमारी गति इस प्रकार सञ्चालित होती है उसे हम *मांसपेशी* कहते हैं। मांसपेशीमें सिकुड़ने और फैलनेकी विचित्र शक्ति होती है और इसी शक्तिके द्वारा वह हमारे शरीरके विविध अङ्गोंकी गतिको निर्धारित करती है।

"हमारे शरीरकी रचना"के प्रकरणमें हम बतला चुके हैं कि शरीरको चीरकर जब हम ऊपरकी बालदार खाल निकालकर अलग कर देते हैं तो उसके भीतर चर्बी लिपटा हुआ मांसपिण्ड दिखाई देता है। बाहुके प्रकरणमें हमने यह भी दिखलाया है कि खाल और चर्बीके हटा देनेपर हम देखते हैं कि प्रगण्डास्थि चारों ओरसे इस मांसपिण्डसे ढकी है। इसी तरह शरीरके अन्य

अङ्ग भी मांसपिण्डसे ढके हैं, जैसे छातीके ऊपर, पसलियोंके बीचमें, पैरके ऊपर आदि स्थानोंपर भी मांसपिण्ड लोथकी लोथमें जमा रहता है। इस तरह हम देखते हैं कि मांस शरीरके हर एक अङ्गमें—चाहे वह मर्म अङ्ग हो या कठोर—थोड़ा या बहुत वर्तमान है।

हमारे शरीरके अङ्गोंकी जितनी गतियां हैं सबोंका सञ्चालन इन्हीं मांसपिण्डोंके द्वारा होता है। हमारे हाथ पैरका हिलना डोलना, मुंहका खुलना, बोलना, चिल्लाना तथा रोना, पलकोंका झपना या बन्द होना, आंखोंका खुलना, हृदयका धड़कना, आंखोंकी पुतलियोंका भंजना, सांस लेना, चबाना, तथा अन्नकी नलीसे होकर अन्नका नीचे पेटकी ओर सरकना, डरके मारे अथवा जाड़ेके मारे कांपना इत्यादि हर एक गतिका संचालन इसी मांसपिण्ड द्वारा होता है जिसे हम मांसपेशी कहते हैं।

मांसपेशियां छोटी छोटी गांठके आकारकी होती हैं और तन्तुओं द्वारा एक दूसरेसे जुटी रहती हैं। यदि ये तन्तु या सूत तोड़ दिये जायं तो पेशियोंकी प्रत्येक गांठ टूटकर अलग हो जाती हैं। पर पेशियोंका निर्माण इस तरहका होता है कि यह पता नहीं चल सकता कि एक पेशीका कहां आरम्भ हुआ और कहां अन्त हुआ।

मांसपेशियां भिन्न भिन्न तरहकी होती हैं, कोई लम्बी, कोई चौड़ी, कोई मोटी, कोई पतली, कोई बीचमें मोटी और सिरेपर पतली होती हैं। इसी तरह पेशियोंका रंग भी एक ही तरहका

नहीं होता। कुछ भाग लाल होता है और कुछ सफेद। यदि लाल और सफेद दोनोंकी परीक्षा करें तो विदित होगा कि सफेद पेशियां लालसे कहीं मजबूत होती हैं। सफेद पेशियोंमें एक विशेषता यह भी देखनेमें आती है कि इनका निर्माण मांसपिण्डसे न होकर पतले पतले रेशोंसे हुआ है जिन्हें तन्तु कहते हैं [देखो चित्र नं० ७]।

ये मांसपेशियां शरीरके किसी अंगमें एक स्थानसे आरम्भ होकर, एक या एकसे अधिक सन्धियोंको पार करती किसी दूसरी हड्डी या कार्टिलेज तक जा पहुंचती हैं। उदाहरणके लिये कोहनीके जोड़को ले लीजिये। इस जोड़के संचालनके लिये दो पेशियां काम करती हैं। एक पेशी कन्धेकी हड्डीसे आरम्भ होती है और नीचे जाकर बहिःप्रकोष्ठास्थिसे मिल जाती है और दूसरी पेशी प्रगण्डास्थिके मध्यसे आरम्भ होती है और अन्तःप्रकोष्ठास्थिके मध्यमें जाकर समाप्त होती है [देखो चित्र नं० ८]।

हम ऊपर कह आये हैं कि मांसपेशियोंमें एक विशेष गुण यह होता है कि वह सिकुडकर छोटी तथा फैलकर बड़ी हो जाती हैं। इसका पता हमें प्रत्येक अङ्गकी गतिसे लगता है। जब हम कोहनी मोड़ते हैं तो बाहुके उपरका मांसपिण्ड मोटा हो जाता है। जब हम सिरको किसी ओर घुमाते हैं तो गर्दनके दोनों ओर मांसपेशियां तनकर खड़ी होजाती हैं और स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं।

चित्र नं० ८

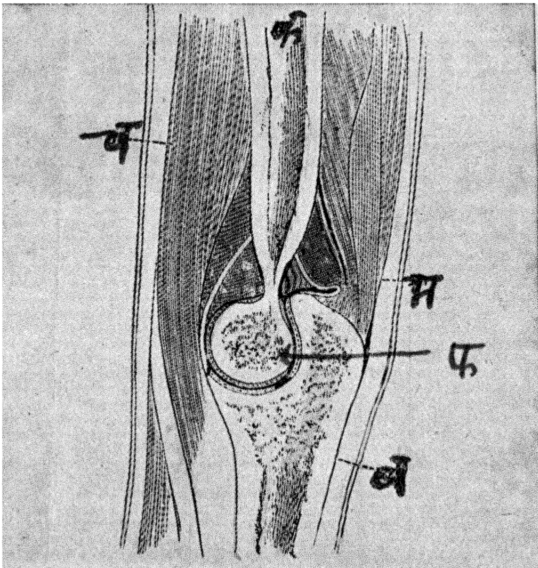

चित्र नं० ८ (क) प्रगण्डास्थि (ब) प्रकोष्ठास्थि (ब,म) पुट्ठे के बण्डल जो ऊपरसे आकर हड्डीको बांधते हैं (फ) जोड़

चित्र नं० ७

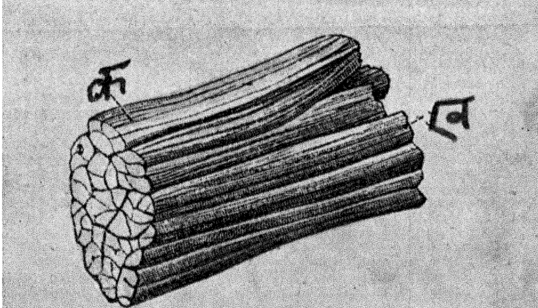

चित्र नं० ७ (क) (ख) पुट्ठे को एक बण्डल

चित्र नं० १०

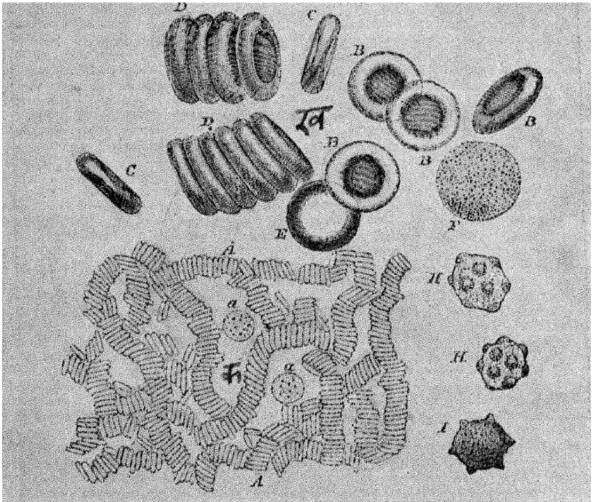

चित्र नं० ९

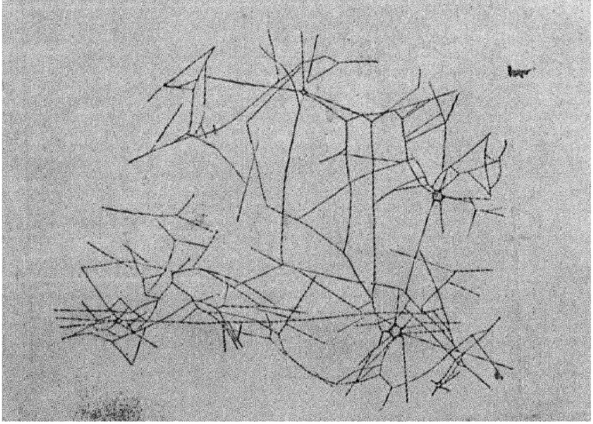

चित्र नं० १०—(क) रक्ताणु बीचमें (A A) दो श्वेताणु
(ख) श्वेताणु

चित्र नं० ९—रेशे जो रक्तमें पाये जाते हैं।

हम यह भी लिख आये हैं कि प्रत्येक मांसपेशीके सिरे किसी न किसी हड्डी, कार्टिलेज, चमड़ा अथवा झिल्लीसे जुड़े रहते हैं। इसलिये जब कोई पेशी सिकुड़ती है या तनती है तो वह अपने साथ जुड़ी हुई वस्तुको भी साथ ही उठा लेती है। इसलिये जिस समय हम शरीरके किसी अङ्गको चलाने की इच्छा प्रगट करते हैं उस समय अङ्गकी पेशियां सिकुड़ने लगती हैं और साथ ही उस अङ्गकी हड्डी या चमड़ा भी उठने लगता है और अङ्गकी गति होती है। . ंकुड़न अधिक कालतक नहीं रह सकती। मांसपेशियोंका स्वाभाविक धर्म सिकुड़कर रहना नहीं है बल्कि फैलकर रहना है।

पर मांसपेशियोंका यह सिकुड़न आपसे आप नहीं होता। मांसपेशियोंको चीरकर आपने देखा होगा कि उनमें रक्तकी नलियां तथा ज्ञानतन्तु या नाडीसूत्र भी बहुतायतसे पाये जाते हैं। मांसपेशियोंकी गति अर्थात् उनका सिकुड़ना और फैलना इन्हीं ज्ञानतन्तुओंकी बदौलत होता है। उसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

हमारे शरीरमें दो प्रकारकी गति होती है। एक तो ऐच्छिक अर्थात् वह गति जो हमारी इच्छासे होती है। यह गति तभी होती है जब हम चाहते हैं, जैसे बिना इच्छाके हम अपने हाथ पैर नहीं फैला सकते। दूसरी गति अनैच्छिक होती है अर्थात् जिसका होना हमारी इच्छापर निर्भर नहीं करता औरजिसे न हम रोक सकते हैं, जैसे दिलका धड़कना, पलकोंका भंजना।

इसी हिसाबसे मांसपेशियोंके तन्तु भी दो भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। इनके सेलोंकी रचना भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है। इस बालपोथीमें हम इससे अधिक नहीं लिखना चाहते। सेलोंके विषयमें साधारण चर्चा करके हम इस प्रकरणको समाप्त करते हैं।

मकानके बनानेमें जिस तरह ईंटका स्थान है, शरीरके निर्माणमें उसी तरह सेलोंका स्थान है। इन्हीं सेलों द्वारा शरीरकी मांसपेशियोंका निर्माण हुआ है। ये सेलें इतनी छोटी होती हैं कि हम अपनी आंखोंसे किसी यन्त्रकी सहायता बिना इन्हें नहीं देख सकते। इन्हीं सेलोंमें जान होती है और शरीरका बढ़ना तथा पुष्ट होना इन्हीं सेलोंपर निर्भर करता है।

चतुर्थ प्रकरण

रक्त या लोहू

चाकू लेकर शरीरके किसी भागको काटिये। आप देखेंगे कि उस स्थानसे लालरङ्गका एक तरल पदार्थ बह बहकर जमीनपर गिरने लगता है। इसी पदार्थको हम रक्त कहते हैं। यह रक्त शरीरके प्रत्येक अङ्गमें वर्तमान है और इसीके द्वारा शरीरके प्रत्येक अङ्गों और अवयवोंका पोषण होता है। रक्तका वजन जलके वजनसे भारी होता है और इसमें काफी परिणाममें गरमी मौजूद रहती है।

साधारण अवस्थामें यह गरमी सदा एकसी बनी रहती है। बीमारीके कारण यह घट बढ़ जाया करती है। डाक्टर लोग मुंह अथवा कखोरी (कोख) में थर्मामीटर लगाकर इसी गर्मी द्वारा शरीरकी अवस्थाका पता लगाते हैं कि बुखारकी इतनी गर्मी इस समय शरीरमें है।

छुरीसे काटनेके बाद जिस समय रक्त बहने लगे थोड़ा रक्त किसी बर्तनमें बटोरकर इकट्ठा कर लीजिये, आप देखियेगा कि शरीरसे अलग होनेके बाद रक्तमें उसी तरहकी तरलता नहीं रह जाती। वह तुरन्त जमने लगता है और कुछ समयके बाद जमकर दहीकी तरह थक्का हो जाता है। जमे हुए रक्तको उसी

बर्तनमें थोडी देरके लिये रहने दीजिये। आप देखेंगे कि उसमेंसे हलका लाल और पीले रंगका एक रस निकलकर इकट्ठा होजाता है और रक्तका थक्का उसपर तैरने लगता है। इस रक्तको *रक्त-रस* कहते हैं।

अब उस थक्केको रक्त-रससे अलग निकाल लीजिये और पानीसे धोना आरम्भ कीजिये। आप देखेंगे कि थक्का सफेद होने लगता है और धीरे धीरे धुलकर एक दम साफ हो जाता है। अब इस सफेद वस्तुको फिर चाकूसे काटिये। इसमेंसे पतले पतले रेशे निकलेंगे। ये रेशे जालकी तरह गुंथे रहते हैं और इसी जालमें कुछ गोल गोल चीजें फंसी हुई दिखाई देती हैं। ये रक्तकी सेलें हैं। इन्हें *रक्त-कण* कहते हैं। इन रेशोंको *फाइब्रिन* कहते हैं [देखो चित्र नं० ६]।

रसायनिक परीक्षासे विदित होता है कि रक्त दो पदार्थोंसे बना है:—

१—जलभाग जिसका नाम अंग्रेजीमें प्लाज्मा है। हिन्दीमें उसे रक्त-जल कह सकते हैं।

२—सेलें अर्थात् रक्त-कण। ये जीवित अवस्थामें सदा उसी रक्त-जलमें तैरा करती हैं।

रक्त-जल—यदि आप विशेष यन्त्रों-द्वारा रक्तमेंसे रक्त-कणोंको निकालकर अलग कर लें तो जो पदार्थ बचा रह जायगा वही रक्त-जल है। रक्त-कणोंके अलग होजानेपर उसका रंग अब लाल नहीं रह जाता। हलका लाल और पीला रंग दिखाई देगा।

इसमें अन्य कई पदार्थ भी मिले रहते हैं जो इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनका वर्णन इस छोटीसी पुस्तकमें नहीं किया जा सकता।

रक्त-कण—रक्त-जलमें तीन प्रकारके रक्त-कण पाये जाते हैं:—

(१) लाल रक्तकण अर्थात् रक्ताणु

(२) श्वेत रक्तकण अर्थात् श्वेताणु

(३) सूक्ष्म रक्तकण अर्थात् सूक्ष्माणु

रक्ताणु—शरीरके रक्तवारिमें रक्ताणुकी संख्या श्वेताणुसे कहीं अधिक होती है। इनका आकार गोल होता है पर दोनों सिरोंपर ये चिपटे रहते हैं। रक्त-जलकी अधिक ललाईके कारण ये ही रक्ताणु हैं। एक बून्दके साठवें हिस्से रक्त-वारिमें इन रक्ताणुओंकी संख्या पुरुषमें पचास लाख और स्त्रीमें पैंतीस लाख पाई जाती है। दूध पीनेवाले प्राणियोंके रक्तमें अन्य जीवोंके रक्तसे विशेषता रहती है। उसमें एक तरहका और एक पदार्थ पाया जाता है जो दूध न पीनेवाले जीवोंमें नहीं पाया जाता। रक्ताणुओंके भीतर एक लाल रंगका पदार्थ पाया जाता है जिसे हम ग्लोबिन या *कणरञ्जक* कहते हैं। जब लाल कण टूटते हैं तो इसका रंग रक्तजलमें घुलकर मिल जाता है। ज्वरके कीड़े सबसे पहिले इसी ग्लोबिनमें घुस जाते हैं और कणरञ्जकका विनाश करने लगते हैं [देखो चित्र नं० १०]। इसका परिणाम यह होता है कि इन कणोंकी संख्या घट जाती है। इनके घटनेसे रक्तकी ललाईमें कमी आजाती है, मनुष्यका चेहरा पीला पड़ जाता है और हम लोग कहने लगते हैं कि इसके शरीरमें रक्त नहीं रह गया।

श्वेताणु—इनका रङ्ग सफेद होता है। ये रक्ताणुसे कुछ बड़े होते हैं। इनकी शकल भी रक्ताणुसे भिन्न होती है। रक्तजलमें इनकी संख्या भी बहुत ही कम होती है अर्थात् जितने रक्तमें रक्ताणुकी संख्या ५० लाख होती है उतने ही रक्तमें श्वेताणुको संख्या अधिकसे अधिक १०००० होती है। जीवित अवस्थामें ये श्वेताणु अपना रूप सदा बदलते रहते हैं। साधारण अवस्थामें ये गोलाकार होते हैं। रक्तधारामें चार प्रकारके श्वेताणु पाये जाते हैं। कभी कभी इससे भी अधिक तरहके पाये जाते हैं। इनका सविस्तर वर्णन इस पुस्तकमें नहीं किया जा सकता।

रक्तका जमना—हम पीछे लिख आये हैं कि शरीरसे अलग होते ही रक्त जमने लगता है और कुछ देरके बाद जमकर दहीके थक्केकी तरह हो जाता है। प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यों होता है। क्या कारण है कि शरीरसे बाहर निकलते ही रक्त इतनी जल्दी जम जाता है।

ताजे रक्तको एक कटोरेमें रख लीजिये और सेवार या इसी तरहकी अन्य किसी लकड़ीको ले लीजिये और उसीसे रक्तको हिलाना आरम्भ कीजिये। स्वभावतः शरीरसे अलग होते ही रक्तको धीरे धीरे इस तरह जमने लगना चाहिये कि आपका हिलाना कठिन होजाय और रक्त आपके हाथकी लकड़ीको थाम ले। पर आप देखियेगा कि रक्त जमता नहीं और यदि आप रक्तको उसी तरह हिलाते रहियेगा तो वह देर तक भी नहीं जमेगा, बल्कि वह जमेगा ही नहीं। *इस तरह बरा-*

बर हिलाते रहकर आप खूनका जमना रोक देते हैं। अब धीरे धीरे कटोरेमेंसे हाथकी उस लकड़ीके बण्डलको निकाल लीजिये जिससे आप रक्तको हिला रहे थे। परीक्षा करनेपर मालूम होगा कि बण्डलके चारों ओर पतले रेशे लिपटे हुए हैं। इनका रङ्ग लाल रहेगा। दूसरे कटोरेमें साफ पानी रखकर इस बण्डलको उसीमें डालकर हिलाइये। आप देखेंगे कि धीरे धीरे इसका रङ्ग घुल जाता है और लकड़ीमें लिपटा हुआ रेशा सफेद हो जाता है। इससे प्रगट हुआ कि यही रेशेदार वस्तु ही—जिसे फाइब्रिन कहते हैं—रक्तमें जमनेवाली वस्तु है। यदि इसे रक्तसे अलग कर लें तो फिर रक्त जम नहीं सकता।

जमे हुए रक्तके थक्केमेंसे एक टुकड़ा काटकर निकाल लीजिये और उसे पानीसे भली भांति धोइये। साफ होजानेपर आप देखियेगा कि इस जमे हुए रक्तमें भी वे रेशे हैं जो आपकी लकड़ीके बण्डलमें फंसे हुए थे।

इस परीक्षासे हम इस परिणामपर पहुंचे कि रक्तमें जमनेवाला पदार्थ फाइब्रिन है। यदि उसे रक्तसे अलग कर दिया जाय तो फिर रक्त जम नहीं सकता।

रक्त शरीरमें क्यों नहीं जमता?—परीक्षासे हमें इतना मालूम हुआ कि रक्तके जमनेमें बाहरी कोई कारण सहायक नहीं होता। रक्तमें ही ऐसी वस्तु मौजूद है जिसके कारण रक्त जमने लगता है। ऐसी दशामें साधारणतः यह शङ्का उत्पन्न हो

सकती है कि शरीरमें रक्त क्यों नहीं जम जाता। जब रक्तमेंही जमनेवाली वस्तु मौजूद है तो हमारे शरीरकी नालियोंमें ही रक्तको जम जाना चाहिये। पर ऐसा नहीं होता। इससे हम यह कह सकते हैं कि शरीरमें एक तरहकी गर्मी होती है जो रक्तको जमनेसे रोकती है और शरीरसे अलग होते ही उस गरमीके न मिलनेके कारण रक्त जमने लगता है। पर यह बात नहीं है। शरीरसे अलग कर लेनेपर रक्तको जितना गरम कीजिये उतनी ही जल्दी वह जम जायगा। और यदि परिणामसे अधिक ठण्डक पहुंचाइये तो वह दिन भर पड़ा रह जायगा और नहीं जमेगा। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि गर्मीसे रक्त नहीं जमता और सर्दी या ठंढकसे जम जाता है। किसी किसी बीमारीमें तो रक्त हमारे शरीरकी नालियोंमें ही जम जाता है। इससे हम यह निश्चय रूपसे नहीं बतला सकते कि रक्त क्यों जमता है। केवल इतना ही कह सकते हैं कि शरीरमें कोई ऐसा पदार्थ अवश्य है जो रक्तको जमनेसे रोकता है और ज्यों ही रक्त शरीरसे अलग होजाता है, जमने लगता है।

हम पहले ही कह आये हैं कि रक्त पानीसे गाढ़ा होता है। आपको शायद यह भ्रम हो कि फाइब्रिन निकाल लेनेपर रक्त गाढा नहीं रहता। पर रक्त-रस भी पानीसे सदा गाढ़ा रहता है।

कटोरेमें जमा रक्तका थक्का निकाल लीजिये और रक्त-रसको आगपर चढ़ाकर गरम कीजिये। रक्त-रस खौल नहीं सकता।

यदि उसे गरम करते जाइये और उतनी आंच पहुंचाइये जितनेमें खौलने लगता है तो वह जम जायगा। इसकी परीक्षा करनेसे आपको मालूम होगा कि रक्त-रसमें भी अनेक तरहके ऐसे पदार्थ वर्त्तमान हैं जो गरम करनेपर जम जाते हैं। इन्हींको उपस्थितिके कारण रक्त पानीसे अधिक गाढ़ा मालूम होता है।

रक्तके बारेमें इतना जान लेनेके बाद अब इस बातको भी जान लेनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है कि हमारे शरीरमें रक्त किस तरह घूमता या चक्कर मारता है तथा इसकी दौरानका क्या ब्यौरा और परिमाण है। इसका परिचय हम अगले प्रकरणमें देंगे।

आरम्भमें लिखा जा चुका है कि धमनी तथा शिरामें रक्तकी गतिका संचालन हृदयके द्वारा होता है। हृदय एक प्रकारका खोखला कोठा है। यह कोठा सीधमें (ऊपरसे नीचेतक) दो भागोंमें विभक्त है। यह परदा इतना मोटा है कि एक कोठेका दूसरे कोठेसे किसी तरहका संबन्ध नहीं रह जाता। इस तरह हृदय दो कोठोंमें विभक्त होजाता है, एक कोठा दाहिनी ओर और दूसरा कोठा बाईं ओर होता है। प्रत्येक कोठेके दो मञ्जिलें होती हैं। ऊपरकी मञ्जिलको *ग्राहक कोष्ठ* और नीचेकी मञ्जिलको *क्षेपक कोष्ठ* कहते हैं। इसका कारण यह है कि ऊपरकी मञ्जिलमें रक्त आकर इकट्ठा होता है और नीचेकी मञ्जिलसे होकर वह बाहर निकलता है। ऊपरकी मञ्जिल नीचेकी मञ्जिलसे एक पतले परदे द्वारा अलग की गई है। इसमें तीन दरवाजे हैं जो इस प्रकारसे खुलते हैं कि नीचेकी मञ्जिलसे ऊपरकी ओर रक्त यदि जाना चाहे तो वे तुरन्त बन्द होजाते हैं। बाईं कोठीकी मञ्जिलोंमें केवल इतना भेद होता है कि उसकी दीवालमें केवल दो किवाड़ होते हैं [देखो चित्र नं० ११]।

इस प्रकार हृदयमें चार कोठरियां हो गईं :—

१—*दाहिना ग्राहक कोष्ठ*—हृदयकी दाहिनी ओरका ऊपरका वह कोठा जिसमें अशुद्ध रक्त शरीरमेंसे जाकर इकट्ठा होता है।

२—*दाहिना ग्राहक कोष्ठ*—दाहिनी ओरका बीचवाला कोठा जिसके द्वारा अशुद्ध रक्त बाहर निकलकर दोनों फेफड़ोंमें शुद्ध होनेके लिये जाता है।

चित्र नं० ११

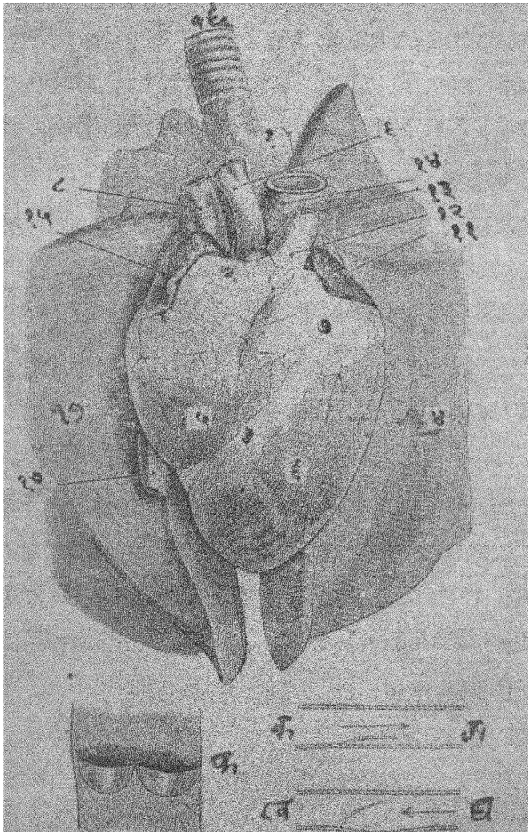

चित्र नं० १२

चित्र नं० १२ (फ) अर्धचन्द्राकार कपाट जो रक्तको उलटा बहनेसे रोकते हैं। रक्त (क) से (न)की ओर जा सकता है पर (घ) से (ख) की ओर नहीं जा सकता।

चित्र नं० ११ हृदय, शरीरसे बाहर निकाल लेनेपर फेफड़ा तथा रक्तकी नालियां साथ हैं। (१६) वायु प्रणाली (१७) बांया फेफड़ा (४) दाहिना फेफड़ा (२,७) ग्राहक कोष्ठ (५,६) क्षेपक कोष्ठ (१४) महाधमनी, महाधमनीकी शाखायें (८) उर्ध्वगा महाशिरा (१०) अधोगा महाशिरा।

चित्र नं० १३

चित्र नं० १४

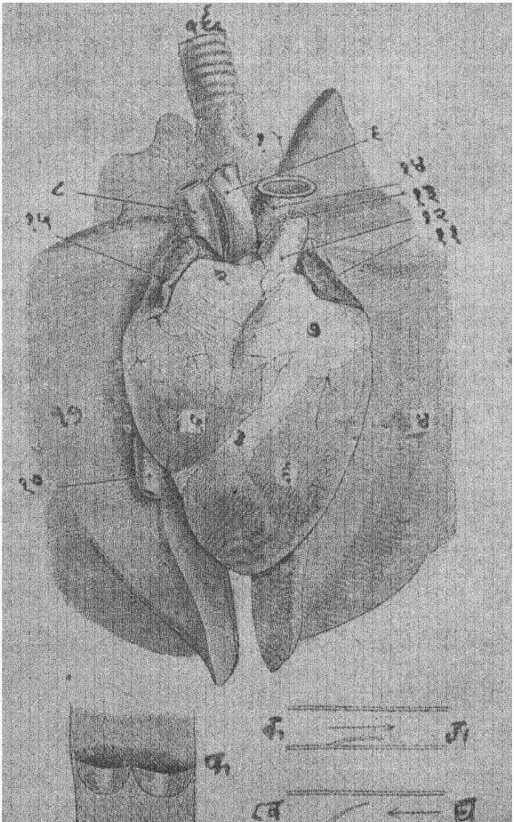

चित्र नं० १४ (ग्रा, कोष्ठ) ग्राहक कोष्ठ (क्षे० को०) क्षेपक कोष्ठ (क) में ग्राहक कोष्ठसे क्षेपक कोष्ठमें रक्त आ रहा है। कपाट खुलकर दोनों ओर सट गये हैं (ख) में क्षेपक कोष्ठ भर गया है और रक्त बाहर धमनीमें जा रहा है। कपाट बन्द हैं।

चित्र नं० १३ फेफड़ा, हृदय तथा प्रधान नलियां, रक्तकी क्रिया हृदयमें किस प्रकार होती है। (ब, फे) बांया फेफड़ा। (फे, दा) दाहिना फेफड़ा (२८,२१) ग्राहक कोष्ठ (२५,२८) क्षेपक कोष्ठ (३७) वायु प्रणाली (११) महाधमनी (१०) धमनी (२४) फुसफुसिया शिरा (५) अधोगा महाशिरा (२७) उर्ध्वगा महाशिरा (४) फुसफुसिया धमनी।

३—*बायां ग्राहक कोष्ठ*—बाईं ओरकी ऊपरकी मञ्जिल जिसमें फेफड़ोंमें शुद्ध हुआ रक्त आकर इकट्ठा होता है।

४—*बायां क्षेपक कोष्ठ*—बाईं ओरका बिचला कोठा जिसके द्वारा शुद्ध रक्त बाहर निकलकर सारे शरीरमें भ्रमण करता है।

दाहिने और बायें कोठेसे परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। बीचकी दीवाल इतनी मोटी है कि इधरकी कोई वस्तु उधर नहीं जा सकती। पर ग्राहक और क्षेपक कोष्ठकी दीवाल बहुत पतली है और इसमें दाहिनी ओर तीन तथा बाईं ओर दो दरवाजे बने हैं जिनसे ऊपरकी वस्तु नीचे जा सके। दरवाजोंको बन्द करनेके लिये झिल्लीदार परदा बना हुआ है। इसे *कपाट* कहते हैं। इसकी गति ठीक स्प्रिंगदार किवाड़की तरह होती है अर्थात् ऊपरसे (बाहरसे) ठेलिये तो ये खुल जाते हैं पर भीतरकी ओरसे धक्का दीजिये तो ये और भी तेजीसे बन्द हो जायंगे। इसकी जांच कर लेनेके लिये आप किसी प्राणीके हृदयको लीजिये और लोटाभर पानी लेकर ऊपरके छेद द्वारा ग्राहक कोष्ठको भरिये। आप देखियेगा कि साथ ही क्षेपक कोष्ठ भी भर जाता है। दोनों कोष्ठोंके भर जानेपर ग्राहक कोष्ठका जल निकाल लीजिये और उसे चीर डालिये। बीचका परदा और दरवाजा आपको स्पष्ट दिखाई देगा। अब आप क्षेपक कोष्ठको नीचेसे दबाइये। आप देखियेगा कि जो दरवाजा अभी तक खुला था उसपर भीतरसे कपाट आकर लग गये और उसका मार्ग बन्द हो गया। [देखिये चित्र नं० ११]

हृदयको हाथमें उठा लीजिये और दाहिनी कोठीकी जांच कीजिये। आप देखियेगा कि इसमें दो नालियां हैं। दोनों नालियां ग्राहक कोष्ठमें बाहरसे आई हैं। ऊपरवालीको *ऊर्ध्व महाशिरा* और नीचेवालीको *निम्न महाशिरा* कहते हैं। शरीरके ऊपरके अवयवों अर्थात् अङ्गों—सिर, छाती, गर्दन तथा भुजा—का अशुद्ध रक्त इकट्ठा होकर ऊर्ध्व महाशिरा द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठमें आता है और शरीरके निचले भाग—पैर, उदर, अंतड़ी, मूत्राशय, यकृत—का अशुद्ध रक्त इकट्ठा होकर निम्न महाशिरा द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठमें आता है।

दाहिने ग्राहक कोष्ठमें जानेपर रक्तपर कोई क्रिया नहीं होती। यह एक तरहका कोठा है जहां अशुद्ध रक्त इकट्ठा भर होता है और इकट्ठा होकर जैसाका तैसा क्षेपक कोष्ठमें चला जाता है। क्षेपक कोष्ठसे रक्त एक नली द्वारा बाहर निकलता है। आगे चलकर इस नलीके दो रास्ते हो जाते हैं। एक रास्ता तो दाहिने फेफड़ेमें चला जाता है और दूसरा बायें फेफड़ेमें। इस तरह इस नली द्वारा अशुद्ध रक्त दाहिने क्षेपक कोष्ठसे होकर फेफड़ेमें शुद्ध होनेके लिये पहुंचता है। जिस तरह ग्राहक और क्षेपक कोष्ठके बीचमें दरवाजोंको रोककर कपाट खड़े हैं उसी तरह क्षेपक कोष्ठ तथा बाहर जानेवाली इस नलीके बीचमें भी कपाट हैं जो नलीमेंसे रक्तको क्षेपक कोष्ठमें नहीं आने देते। इन कपाटों-की शकल ठीक अर्ध-चन्द्राकार होती है [देखिये चित्र नं० १२]।

इस तरह अशुद्ध रक्त फेफड़ोंमें पहुंचकर पवित्र होता है।

फेफड़ेमें रक्त किस तरह पवित्र या शुद्ध होता है, अशुद्ध रक्तमें कौनसा पदार्थ रहता है और शुद्ध होनेमें फेफड़ों द्वारा इसमें वह शुद्ध पदार्थ किस तरह गायब हो जाता है तथा शुद्ध रक्तमें कौनपदार्थ आ जाता है इसका दिग्दर्शन हम आगे करावेंगे। इस स्थानपर केवल इतनाही लिख देना पर्याप्त समझना चाहिये कि अशुद्ध रक्त फेफड़ेमें पहुंचकर पवित्र होता है और नालियों द्वारा जिन्हें धमनियां कहते हैं—यह शुद्ध रक्त बायें ग्राहक कोष्ठमें जाता है।

अब बकरेके हृदयको—जिसे आपने अपने बायें हाथमें ले रखा है—घुमाइये और बायां भाग अपने सामने कीजिये। आप देखेंगे कि ऊपरकी ओर बायें ग्राहक कोष्ठमें चार नालियां आकर गिरती हैं। इनमेंसे दो नालियां तो दाहिने फेफड़ेसे शुद्ध रक्तको लाती हैं और दो नालियां बायें फेफड़ेसे शुद्ध रक्त लाती हैं। ग्राहक कोष्ठमें शुद्ध रक्त इकट्ठा होकर बिना किसी परिवर्तनके क्षेपक कोष्ठमें चला जाता है। बायें ग्राहक कोष्ठमें भी रक्त-पर कोई क्रिया नहीं होती। शुद्ध रक्त बायें क्षेपक कोष्ठसे बाहर निकलता है। क्षेपक कोष्ठके पीछेकी दीवार देखिये। आपको विदित होगा कि एक मोटी नाली उसमेंसे निकलकर बाहरको गई है। यह नाली शरीरकी समस्त रक्त नालियोंसे बड़ी है। इसे वृहत् धमनी कहते हैं। जो धमनियां शुद्ध रक्तको फेफड़ोंसे बायें ग्राहक कोष्ठमें लाती हैं उनके अतिरिक्त शरीरमें जितनी अन्य धमनियां हैं सबका उद्गम इसी एकमात्र वृहत् धमनीसे

होता है। क्षेपक कोष्ठ तथा उस बृहद् धमनीके मोहड़ेपर भी मार्गको रोकनेके लिये अर्ध चन्द्राकार तीन कपाट बने हैं जो रक्तको धमनीसे क्षेपक कोष्ठमें नहीं आने देते।

इस तरह हृदयमें चार कपाट होते हैं:—

१—एक कपाट तो दाहिनी ओर ग्राहक कोष्ठ तथा क्षेपक कोष्ठके बीचमें होता है जो क्षेपक कोष्ठमेंसे रक्तको ग्राहक कोष्ठम जानेसे रोकता है।

२—दूसरा कपाट दाहिने क्षेपक कोष्ठ तथा फुसफुसिया धमनीके बीचमें होता है। यह रक्तको फुसफुसिया धमनींसे क्षेपक कोष्ठमें आनेसे रोकता है।

३—तीसरा कपाट बायीं ओर ग्राहक कोष्ठ तथा क्षेपक कोष्ठके बीचमें है। यह रक्तको बायें क्षेपक कोष्ठमेंसे ग्राहक धमनीमें जानेसे रोकता हैं।

४—चौथा कपाट महावृहत् धमनी तथा बायीं ओरके क्षेपक कोष्ठके बीचमें होता है। इसके द्वारा वृहत् धमनोसे रक्त बायीं ओरके क्षेपक कोष्ठमें नहीं आ सकता। बायीं ओरके ग्राहक तथा क्षेपक कोष्ठके वीचमें केवल दो कपाट हैं जो अर्ध चन्द्रा कार बने हैं। पर दाहिनी ओरके ग्राहक तथा क्षेपक कोष्ठके बोचमें तीन कपाट हैं। ये कपाट चिपटे और झिल्लीदार होते हैं।

यहांतक तो हमने यह दिखलाया कि हृदय क्या वस्तु है, उसकी बनावट किस तरहकी होती है तथा रक्तके संचालनमें वह किस तरह सहायता देता है। इतनेसे आप भलो भांति

समझ गये होंगे कि हृदयका काम केन्द्र या मध्यस्थका काम है जो रक्तको बटोरता है, और बांटता रहता है। एक तरफसे खराब रक्तको वह बटोरता है, उसे शुद्ध करनेके लिये भेजता है और दूसरी तरफसे शुद्ध रक्तको वह सारे शरीरमें भ्रमण या दौरा करनेके लिये भेजता है। यही हृदयका प्रधान काम है। इसके बाद हम यह दिखलानेका यत्न करेंगे कि हृदय किस तरह रक्तको आगे बढ़ाता है और फिर बटोरकर अपने पास इकट्ठा कर लेता है।

हृदयका सिकुड़ना और फैलना—हम ऊपर कह आये हैं कि हृदय एक प्रधान केन्द्र या स्थान है जिसके द्वारा रक्तका संचालन होता है। हम यह भी कह आये हैं कि हृदयका पिण्ड अनैच्छिक मांसपेशियों द्वारा बना है अर्थात् वे आपसे आप सिकुड़ा और फैला करती हैं। हम अपनी चेष्टासे उन्हें रोक नहीं सकते। जीवित अवस्थामें छातीके पास बायीं ओर स्तनके सवा इञ्च नीचे कान लगाकर ध्यानसे सुनिये। आपको मालूम होगा कि कोई चीज लगातार चल रही है। हमलोग साधारणतः इसे *हृदयकी धड़कन* कहते हैं। यह आवाज "धक् धों" के रूपकी होती है। एक मिनिटमें प्रायः ७२ बार यह आवाज सुननेमें आती है। यही हृदयकी गति है और इसी गति द्वारा हृदय रक्तको बाहरकी ओर ठेलता है। यह संचालन निम्न लिखित प्रकारसे होता है:—

जिस समय समस्त शरीरको आवश्यक खाद्य पदार्थ और

पौष्टिक सामान देकर रुधिर दोनों महाशिराओं द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठमें पहुंचता है और वह कोष्ठ भर जाता है उस समय ग्राहक कोष्ठ सिकुड़ने लगता है। धककी आवाज यही ध्वनि देती है। सिकुड़नेसे ग्राहक कोष्ठकी कोठरी तंग होने लगती है और उसमेंसे रक्त दाहिने क्षेपक कोष्ठमें जाने लगता है। जब ग्राहक कोष्ठ पूरी तरहसे सिकुड़ जाता है और उसका समूचा रक्त क्षेपक कोष्ठमें चला जाता है तब ाहक कोष्ठ खुलने लगता है। इस समय कान लगाकर सुननेसे धोंकी प्रतिध्वनि मालूम होती है। क्षेपक कोष्ठके भर जानेपर इसकी मांसपेशियां सिकुड़ने लगती हैं और कोठा तंग होने लगता है। इसके सिकुड़नेके साथ ही ग्राहक और क्षेपक कोष्ठके बीचका कपाट उठकर बन्द हो जाता है जिससे रक्त ऊपर ग्राहक कोष्ठमें नहीं जाने पाता। इधर फुसफुसिया धमनीका द्वार खुल जाता है और रक्त फुसफुसिया धमनीमें भरने लगता है। क्षेपक कोष्ठके पूरी तरह खाली हो जानेपर मांसपेशियां खुलने लगती हैं। इनका खुलना आरम्भ होते ही क्षेपक कोष्ठका कपाट बन्द हो जाता है और फुसफुसिया धमनीका रक्त क्षेपक कोष्ठमें नहीं जाने पाता। इस तरह दाहिने कोष्ठसे निकलकर रक्त फुसफुसिया धमनी द्वारा होकर दो नालियोंमें विभक्त हो दाहिने और बायें फेफड़ेमें जाता है [देखो चित्र नं० ११]।

फेफड़ा रक्तको शुद्ध करता हैं। शरीरमें घूम घूमकर रक्त जिस समय पौष्टिक पदार्थ शरीरके अङ्गोंको देता है उसके साथ

ही कुछ अशुद्ध और जहरीले पदार्थको अपनेमें ले लेता है। फेफड़ेमें जाकर वही रक्त शुद्ध होता है अर्थात् उसके जहरीले पदार्थ उससे दूर होजाते हैं। इस तरह रक्त शुद्ध होकर चार नालियों द्वारा (दो दाहिने फेफड़ेकी और दो बायें फेफड़ेकी) बायें ग्राहक कोष्ठमें एकत्रित होता है। हृदयके बायें कोष्ठमें रक्तके एकत्रित हो जानेपर ठीक उसी तरहकी क्रिया होती है जिस तरहकी क्रिया दाहिने कोष्ठमें अशुद्ध रक्तपर होती है। इस तरह बायें ग्राहक और क्षेपक कोष्ठसे होता हुआ रक्त वृहद् धमनीमें पहुंचता है। हृदयसे बाहर होते ही वृहद् धमनीमें शाखायें फूटती हैं और सारे शरीरमें रक्त फैलने लगता है।

हृदयकी यह गति लगातार चलती है और वह रक्तको ढकेलकर पौष्टिक पदार्थोंके साथ उसे सारे शरीरमें पहुंचाती है। इस तरह रक्तकी क्रिया लगातार होती रहती है। एक क्षणके लिये भी यह क्रिया बन्द नहीं होती। साथ ही हृदयका सिकुड़ना और खुलना भी जारी रहता है। हृदयका कोई भी कोष्ठ एक क्षणके लिये खाली नहीं रहता। एक सिकुड़ता है तो दूसरा भरता है।

ऊपर जिस तरहसे हमने वर्णन किया है उससे पढ़नेवाले कदाचित इस भ्रममें पड़ सकते हैं कि हृदयके चारों कोष्ठ बारी बारीसे भरते और सिकुड़ते तथा खाली होते और फैलते हैं। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। केवल समझानेके लिये हमने चारों कोष्ठोंका अलग अलग वर्णन किया है, नहीं

तो इनका सिकुड़ना और खाली होना तथा फैलना एक साथ ही होता है और जीवन पर्यन्त यह क्रिया इसी तरह चलती रहती है। कौनसा कोष्ठ भरा, कब खाली हुआ, यह बतलाना कठिनही नहीं बल्कि असम्भव है। साधारणतः हृदयकी क्रिया इस प्रकार होता है—पहले दोनों ग्राहक कोष्ठोंका सिकुड़ना आरम्भ होता है। उसके बाद दोनों क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ते हैं। जब रक्त बृहद् धमनी और फुसफुसिया धमनीमें आजाता है तब एक बार सारा हृदय सिकुड़ता है। इसके बाद हृदय क्षण कालके लिये विश्राम लेता है और फिर पूर्ववत् सारी क्रिया आरम्भ हो जाती है। यह क्रिया कितनी जल्दी होती है इसका अनुमान केवल इतनेसे ही किया जा सकता है कि प्रत्येक मिनटमें हृदय ७२ बार रक्तको ग्रहण करता है और उसे ढकेलकर आगे फेंकता है।

हृदयकी धड़कन—हम ऊपर कह आये हैं कि यदि आप किसी जीवित मनुष्यकी बायीं छातीपर स्तनसे सवा इञ्च नीचे कान लगाकर गौरसे सुनें तो आपको "धक् धों" की आवाज सुनाई देगी। यह आवाज प्रायः एक मिनिटमें ७२ बार सुनाई देगी। यदि इससे कम बार आवाज सुनाई दे या धीमी हो तो समझ लीजिये कि वह व्यक्ति अस्वस्थ है। यह आवाज हृदयके कोषोंके सिकुड़ने और फैलनेकी है। 'धक्' की आवाजके साथ ही 'धों' की आवाज सुनाई देगी पर पुनः 'धक्' की आवाज जरा देरमें सुनाई देगी अर्थात् 'धक्' और 'धों' की आवाजमें

जितना अन्तर पड़ता है 'धों' और 'धक्' की आवाजमें उससे अधिक अन्तर पड़ता है। इसका कारण भी हम पहले बतला चुके हैं। 'धक्' की आवाज कोष्ठोंके सिकुड़नेकी होती है और 'धों' की आवाज कोष्ठोंके खुलनेकी होती है। सिकुड़नेके बादही खुलने-की क्रिया होती है। इससे यह आवाज एकके बादही दूसरी सुनाई देती है पर एक बार फैलनेपर हृदय क्षण कालके लिये विश्राम लेता है और तब सिकुड़ने लगता है। इसलिये खुलने और सिकुड़नेकी आवाजके बीचमें कुछ अन्तर दिखाई देता है। डाक्टर लोग इसी धड़कनकी परीक्षासे शरीरके नीरोग तथा रोगी होनेका पता लगाते हैं। यदि शरीर नीरोग है तो हृदयकी धड़कन समान रहेगी और यदि रोगी है तो धड़कन अस्थिर रहेगी अर्थात् कम होगी और मन्द रहेगी।

इसी तरह बालकोंके हृदयकी धड़कन भी प्रायः पुरुषोंके हृदयकी धड़कनके बनिस्बत अधिक होती है। सोते हुए बालकके हृदयके पास कान लगाकर गौरसे सुनिये। हृदय दूने जोरसे धड़कते सुनाई देगा। कुछ लोगोंका अनुमान है कि बालकोंके हृदयकी गति प्रति मिनिट ११४ बार तक होती है। इस छोटी पुस्तकमें इससे अधिक लिखना कठिन है।

इसके अतिरिक्त अन्य कई अवस्थायें हैं जिनमें हृदयकी गति तेज या मन्द होजाती है। जैसे व्यायामके समय शरीरकी सेलें अधिकाधिक पौष्टिक पदार्थ चाहता हैं। पौष्टिक पदार्थ पहुंचानेके लिये रक्तका दौरा तेजीके साथ होने लगता है और हृदयकी गति तीव्रगामी होजाती है।

हृदयकी गति यदि क्षण भरके लिये भी मन्द पड़ जाती है तो शरीर शिथिल हो जाता है कभी कभी हृदयकी गति रुक जानेसे ही प्राणी मर जाता है।

रक्तका दौरा—यहांतक तो हमने यह दिखलाया कि रक्त किस प्रकार हृदय द्वारा सारे शरीरमें ढकेला जाता है। यहींपर अब हम यह भी दिखला देना चाहते हैं कि बायें क्षेपक कोष्ठसे निकलकर रक्त जब बृहद् धमनीमें आता है तब उसका दौरा सारे शरीरमें किस तरह होता है [देखो चित्र नं० १३]।

बायें क्षेपक कोष्ठसे निकलकर बृहद् धमनीकी दो बड़ी शाखायें हो जाती हैं। एक शाखा तो ऊपरकी ओर चलती है और दूसरी शाखा नीचेकी ओर जाती है। ऊपरकी ओरकी शाखा ज्यों ज्यों आगे बढ़ती है त्यों त्यों शाखायें फेंकती जाती है और वक्षःस्थल, हाथ, गर्दन, पीठ तथा सिरमें फैलती है। ये धमनियां ज्यों ज्यों आगे बढ़ती हैं छोटी होती जाती हैं। सेलोंके निकट पहुंचते पहुंचते उनकी दीवार इतनी पतली तथा संकीर्ण हो जाती है कि सिवा एक सेलके उनमें और कुछ नहीं रह जाता। जब धमनियां इतनी छोटी हो जाती हैं तो उन्हें *केशिकायें* कहते हैं। जब रक्त इन केशिकाओंमें पहुंचता है तो उनका सीधा संसर्ग शरीरकी दीवारकी सेलोंसे हो जाता है और सेलें रक्तमेंसे पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करने लगती हैं। हम आगे चलकर बतलावेंगे कि हमें जीवित रहनेके लिये अन्नके साथही साथ आक्सि-

जन नामी एक पदार्थकी आवश्यकता पड़ती है। जिस समय रक्त फैफड़ोंमें शुद्ध होता है वहांसे उसे यही पदार्थ मिलता है। धमनियों द्वारा जो रक्त केशिकाओंमें पहुंचता है उसमें अन्नका रस तथा यह आक्सिजन भरा रहता है। सेलें इसी आक्सिजन और पौष्टिक पदार्थको रक्तसे ग्रहण करती हैं। इस तरह आक्सिजन और पौष्टिक पदार्थके निकल जानेपर रक्त स्वत्वहीन हो जाता है। साथ ही सेलें बराबर अपने शरीरसे एक तरहका विष बाहर निकाला करती हैं। इसे कार्बोनिक ऐसिड कहते हैं। काम करते समय शरीरकी दीवारकी सेलें प्रतिक्षण टूटा करती हैं। उनके टूटनेसे यही विष पैदा होता है। जिस समय सेलें रक्तसे आक्सिजन और पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करती हैं उसी समय वे रक्तको यह विष दे देती हैं। इस विषसे सम्मिलित होनेपर रक्तका रङ्ग नीला होजाता है। पौष्टिक पदार्थ देकर केशिकायें पुनः आपसमें मिलने लगती हैं और उनका आकार धीरे धीरे बड़ा होने लगता है। इस तरह केशिकायें एकमें मिलकर शिरायें बन जाती हैं। शिराओंमें अशुद्ध रक्त रहता है। अब शिरायें नीचेकी ओर चलती हैं और मार्गमें अपनी सहायक शिराओं द्वारा अशुद्ध रक्तको ग्रहण करती जाती हैं और अपना आकार बढ़ाती जाती हैं। दाहिने ग्राहक कोष्ठके पास आते आते सब शिरायें एकमें मिल जाती हैं। और एक वृहद् आकार धारण कर ऊर्ध्व महाशिराके पाससे दाहिने ग्राहक कोष्ठमें प्रविष्ट कर जाती हैं। इस तरह बायें क्षेपक कोष्ठसे निकलकर

शुद्ध रक्त शरीरके ऊपरी अङ्गोंमें दौरा करता हुआ आक्सिजन तथा पौष्टिक पदार्थ देता हुआ और विष लेता हुआ शिराओं द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठमें आकर गिरता है [देखो चित्र नं० १४]।

अभीतक हमने वृहद् धमनीको केवल उस शाखाका वर्णन किया है जो ऊपरको जाती है और धड़के ऊपरी भाग तक सिरको पौष्टिक पदार्थ पहुंचाती है। इसी तरह बृहद् धमनीकी दूसरी शाखा शरीरके नोचेकी ओर जाती है। इस शाखासे भी अनेक धमनियां निकलती हैं जो ऊपरवाली धमनीकी तरह शाखायें फेंकती, छोटी होती, चमड़ा, चर्बी, मांसपिण्ड तथा हड्डियोंमें प्रविष्ट होती, केशियां बनती तथा पुनः जुटकर शिरायें बनकर निम्न महाशिराके नामसे दाहिने ग्राहक कोष्ठमें प्रविष्ठ होती हैं। नीचेकी ओर जो धमनीकी शाखा गई है उससे दो प्रधान शाखायें निकली हैं जिनके बारेमें दो शब्द लिख देने आवश्यक प्रतीत होते हैं।

इसमेंसे एक शाखा तो उदर, अंतड़ी और अन्य अङ्गोंमें जाती है। उदर तथा अंतड़ियोंमें जाकर यह धमनी छोटी छोटी धमनियोंमें विभक्त हो जाती है और अन्तमें केशिकायें बनती हैं। अन्य शिरायें सीधी महाशिरामें जा मिलती हैं। पर यह शिरा सीधी महाशिरामें नहीं जा मिलती। उदरसे होकर यह यकृतमें जाती है और वहां पुनः छोटी छोटी शाखाओंमें विभक्त हो जाती है। इस तरह दो बार केशिकाके रूपमें परिणत होकर यह यकृत भरमें फैलती है और अपना काम करके पुनः शिरामें परि-

वर्तित हो जाती है और तब कहीं महाशिरासे जाकर मिलती है।

धमनीकी दूसरी शाखा (जिसकी चर्चा हम लोग कर रहे हैं) सीधे यकृतमें जाती है और केशिकाके रूपमें होकर वह यकृतकी सेलोंमें फैलती है तथा फिर जुटकर शिराका रूप धारण करती है और उदरसे होकर जो शिरा यकृतमें गई रहती है उसमें मिलकर तब कहीं निम्न महाशिरामें आकर गिरती है। इस तरह जो रक्ताणु शरीरके अधोभागमें जानेवाली धमनीमें पड़ जाते हैं और उसकी (धमनी की) उस विशेष शाखा द्वारा उदर या अंतड़ीमें चले जाते हैं उनका छुटकारा फिर बड़ी कठिनाईसे होता है। विचारोंको एक बार उदरकीके शिकाओंके तङ्ग मार्गको पार कर किसी तरह अपनी रक्षा करनी पड़ती है। वहांसे छुटकारा पाकर जो आगे बढ़े तो थोड़ी ही देर बाद यकृतमें जाकर उन्हें फिर वही दण्ड सहना पड़ता है अर्थात् यकृतमें जाकर विचारोंको फिर एक बार केशिकाओंका तंग मार्ग पार करना पड़ता है।

इस तरह हम देखते हैं कि रक्तका दौरा निम्न लिखित प्रकारसे होता है:—

बायें क्षेपक कोष्ठमें रक्त भरते ही वह सिकुड़ने लगता है। इससे रक्त पूर्ण वेगके साथ बृहद् धमनीमें प्रवेश करने लगता है। बृहद् धमनी अपनी शाखाओं और प्रतिशाखाओं द्वारा रक्तको सारे शरीरमें पहुंचाती है। रक्त ज्यों ज्यों आगे बढ़ता जाता है धमनीकी अनेक छोटी छोटी शाखायें होती जाती हैं। इस

तरह इन छोटी छोटी धमनियोंमें बहकर रक्त केशिकाके जालमें पहुंचता है। केशिकाके जालकी दूसरी ओरसे छोटी छोटी शिराओंका आरम्भ होता है। छोटी छोटी शिरायें परस्पर मिलकर बड़ी शिरायें बनती हैं। अङ्गोंसे बाहर निकलकर ये छोटी शिरायें अन्य शिराओंसे मिलकर बड़ी हो जाती हैं। इस तरह धीरे धीरे सब शिरायें एकमें मिल जाती हैं और नीचेके अङ्गसे एक महाशिरा और ऊपरके अङ्गसे दूसरी महाशिरा अशुद्ध रक्त लेकर दाहिने ग्राहक कोष्ठमें आ गिरती हैं। यह अशुद्ध रक्त दाहिने ग्राहक कोष्ठसे दाहिने क्षेपक कोष्ठमें होता हुआ फुसफुसिया धमनी द्वारा फेफड़ोंमें जाकर शुद्ध होता है। वहांसे शुद्ध होकर रक्त फुसफुसिया शिराओं द्वारा बायें ग्राहक कोष्ठमें जाता है और फिर वृहद् धमनी द्वारा सारे शरीरका दौरा करता है।

रक्तके इस दौरेसे हमें कई बातें मालूम हुईं:—

१—रक्त जहांसे चलता है वहीं फिर लौट आता है। वह उसी वेगसे सारे शरीरका दौरा करता है पर क्षण कालके लिये भी कहीं नहीं ठहरता।

२—अपने निर्दिष्ट स्थानसे अर्थात् बायें क्षेपक कोष्ठसे रक्त एक वृहद् नली द्वारा चलता है। इस नलीकी शाखायें प्रतिशाखायें होती जाती हैं और अन्तमें शाखायें इतनी तेज़ और पतली हो जाती हैं कि एक बार एक रक्ताणुका प्रवेश भी कठिन हो जाता है। फिर ये नलियां जुटने लगत हैं और जुटते जुटते एक महानली होकर दाहिने ग्राहक कोष्ठमें

गिरती है अर्थात् शुद्ध रक्तकी एक धमनी अनेक शाखाओंमें बट जाती है और अशुद्ध रक्तकी अनेक नालियां एक महाशिरा होकर गिरती हैं। धमनीसे शाखायें निकलती हैं और शिरा सहायक शाखाओंके मिलनेसे बनती है। धमनी ज्यों ज्यों आगे बढ़ती है तंग और पतली होती जाती है, शिरा आरम्भमें तंग और पतली रहती है पर ज्यों ज्यों आगे बढ़ती है चौड़ी होती जाती है। और अन्तमें एक महाशिरा हो जाती है। अंगोंमें शुद्ध रक्त धमनियों द्वारा पहुंचता है और वहांसे अशुद्ध रक्त शिराओं द्वारा वापिस आता है। धमनियों तथा शिराओंके बीचमें केशिकाओंका जाल होता है और यही दोनोंका सन्धिक्षेत्र है।

० ३]

३ शुद्ध रक्त लेजानेवाली सभी नालियोंको धमनी और अशुद्ध रक्त लानेवाली सभी नालियोंको शिरा कहते हैं, पर दाहिने क्षेपक कोष्ठसे जो नाली अशुद्ध रक्त फेफड़ेमें ले जाती है उसे धमनी कहते हैं और फेफड़ोंसे शुद्ध रक्त जो नाली बायें ग्राहक कोष्ठमें लाती है उसे शिरा कहते हैं।

४ रक्तके दौरेकी दो गति है और एक प्रकारसे दो हृदय एकमें सटाकर रखे गये हैं। यदि आप किसी तरह हृदयको बीचसे इस प्रकार चीरें कि इसके दोनों कोठे अलग हो जायं और बीचका परदा किसी तरह भी नहीं फटे तो आपको दौरेकी क्रिया स्पष्टतः दो प्रतीत होने लगेंगी। एक तरफ तो दाहिने हृदयमें शिरायें आकर गिरती हैं और फुसफुसिया धमनी रक्तको

फेफड़ोंमें पहुंचाती है और दूसरी ओर फुसफुसिया शिरा फेफड़ोंसे शुद्ध रक्त लाकर बायें हृदयमें गिराती है और वृहद् धमनी उसे सारे शरीरमें ले जाती है। दौरेको दो क्रिया भो स्पष्ट दिखाई देगी। एक क्रिया हृदयमें होगी और दूसरी फेफड़ोंमें।

ऊपर जो विवरण दिया गया है उससे स्पष्ट है कि रक्तका दौरा सदा एक ही तरफ चलता है अर्थात् रक्त बायीं ओरसे बहना आरम्भ करता है और धमनियों, केशिकाओं, शिराओं तथा हृदयके दाहिने कोठे और फेफड़ोंसे होकर पुनः हृदयके बायें कोठेमें आ गिरता है। प्रश्न यह उठता है कि रक्तका यह दौरा ठीक इसी प्रकारसे क्यों होता है, रक्त सदा हृदयके दाहिने भागसे बायें भागकी ओर ही क्यों जाता है, सदा धमनियोंसे होकर शिराओंमें ही क्यों जाता है, उसकी गति एक बार भो उलटी क्यों नहीं होती, अर्थात् रक्त हृदयके बायें भागसे दाहिने भागकी ओर क्यों नहीं बहता और शिराओंसे धमनियोंमें क्यों नहीं जाता?

हमने ऊपर बतलाया है कि हृदयके दोनों तरफके कोठोंके बीचमें तथा जहां क्षेपक कोष्ठ फुसफुसिया धमनीमें तथा वृहद् धमनीमें खुलते हैं, वहां अर्धचन्द्राकार झिल्लीकी थैलियां बनी हैं जो रक्तको भीतरसे बाहर आने देती हैं पर बाहरसे भीतर नहीं जाने देतीं। उनका मुंह बाहरकी ओर खुला रहता है। इसलिये यदि भीतरसे कोई वस्तु बाहरकी ओर जाती है तो वह उनपरसे होकर चली जाती है। वे दबकर नीचेकी दीवालमें सट जाती हैं।

पर यदि कोई चीज़ बाहरसे भीतर आने लगती है तो वह पहले उन्हीं खोखलोंमें जाती है और वे खोखले भरकर इस तरह फूल जाते हैं कि रास्ता बन्द हो जाता है और फिर बाहरसे कोई वस्तु भीतर नहीं आ सकती।

इसी तरहकी थैलियां उन प्रत्येक स्थानोंपर बनी हैं जहांसे रक्त धमनीका साथ छोड़कर शिरामें प्रवेश करता है। केशिका-ओंके दोनों तरफ इस तरहके थैले बने हैं जो कपाटका काम देते हैं। यदि रक्त उलटा होकर बहना चाहे तो रक्ताणु इन थैलोंमें घुस जायंगे और इसे इतना फुला देंगे कि रास्ता एक दमसे बन्द होजायगा।

इस उपरोक्त कथनकी परीक्षा अतिसहजमें हो सकती है। सिल्क या रेशमी कपड़ेका एक टुकड़ा ले लीजिये। उसे सीकर घड़ीकी खोली बनाइये। इस थैलेके बिचले परतको लेई या सरेससे किसी ऐसे कागजमें चिपका दीजिये जो पानीमें तुरत गल न जाय। अब बांस या रबरका एक पाइप या नली लाइये। नलीका छेद इतना बड़ा होना चाहिये जिसमें आपका हाथ जा सके और आप भीतरके हिस्सेको भली भांति देख सकें। कागज सहित थैलेको पाइपमें थोड़ी दूर भीतर सटा दीजिये। इतना करनेके बाद लोटेमें पानी भरकर पहले नलीके छेदमें उस ओरसे डालिये जिस तरफ थैलेका मुंह न हो। आप देखेंगे कि पानी बिना किसी रुकावटके एक तरफसे बहकर दूसरी तरफ गिरने लगता है। अब नलीका मुंह उलट दीजिये और उस

तरफसे पानी डालिये जिस तरफ थैलेका मुंह भी हो। आप देखेंगे कि पानी सबसे पहले थैलेमें भरता है और थैला फूलकर रास्ता रोक लेता है। अब इस पारसे उस पार तक पानी बिना किसी रुकावटके नहीं जा सकता। थैलेके आगे पानी धीरे धीरे बढ़ेगा। यदि थैला ठीक नलीके आकार और नापका बनाया जाय तथा ऐसी वस्तुका बना हो जिससे पानी छन भी न सके तो फिर थैलेके आगे एक बूंद भी पानी नहीं बढ़ सकता। नली भर जायगी और निकलनेका मार्ग न पाकर पानी उसी तरफसे बहने लगेगा जिस तरफसे डाला गया हो।

इस प्रयोगके बाद आप अपने बदनसे कपड़ा उतार डालिये और अपने हाथको सीधा फैलाइये। आप देखेंगे कि आपकी नसें तन गई हैं और साथ ही साथ अशुद्ध रक्तकी शिरायें भी नीली नीली चमड़ेमें दिखाई देंगी जो कलाईकी ओरसे कन्धेकी ओर दौड़ती हुई प्रतीत होंगी। दूसरे हाथसे इन नीली शिराओंमेंसे एकको उलटे दबाइये अर्थात् केहुनीकी ओरसे कलाईकी ओर दबाइये। आप देखेंगे कि ये तुरन्त फूल जाती हैं और थोड़े थोड़े फासलेपर गांठ उभड़ते दिखाई देते हैं। ये ही कपाट या थैले हैं। आगे बढ़े जानेसे रोका गया रक्त पीछे जानेकी चेष्टा करता है। पर ज्योंही वह पीछेकी ओर फिरता है रक्ताणु थैलोंमें घुस जाते हैं। थैला फूलकर कपाटकी तरह सामने खड़ा हो जाता है और रास्ता रोक लेता है। यदि आप कलाईकी ओरसे इस शिराको दबावें तो रक्त और भी तेजीके साथ आगे

बढ़ जायगा और यदि आप कुछ कालतक उस शिराको उसी तरह दबाये रहें तो आगेकी शिरा बिलकुल खाली पड़ जायगी क्योंकि मार्ग बन्द होनेसे उधरसे रक्त नहीं आवेगा।

इससे यह प्रगट हुआ कि रक्तके इस प्रकारसे बहनेका एक कारण तो शिराओंमें इन थैलोंका होना है। इसका एक दूसरा भी कारण है जिसका सम्बन्ध सीधे हृदयसे है और जिसका दिग्दर्शन आगे चलकर कराया जायगा।

हमने कहा है कि रक्तके इस दौरानका दूसरा कारण हृदय है अर्थात् हृदयके भीतर भी इस तरहकी बनावट है जिसके कारण रक्त दाहिनी ओरसे बायीं ओरको ही जाता है। हृदयका वर्णन करते हुए हमने दिखलाया है कि ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों-के बीचमें चमड़ेकी झिल्लियां इस तरहसे चिपकी पड़ी हैं कि ग्राहकसे क्षेपकमें जाते समय रक्त धक्का देकर उन्हें बगलमें हटा देता है और आगे बढ़ जाता है। तरल पदार्थ पाकर ये झिल्लियां तैरने लगती हैं। अब यदि रक्त पीछेकी ओर आना चाहता है तो वह झिल्लियोंको धक्का देता है और झिल्लियां ग्राहक कोष्ठके दरवाजोंको रोक लेती हैं। इसपर यह प्रश्न भी उठ सकता है कि क्या रक्तमें इतना जोर नहीं रहता कि वह इस झिल्लीको ढकेलकर उलट दे और उलटे मार्गसे बहने लगे। यह भी संभव है। पर रक्तके मार्गमें एक रुकावट है। झिल्लियां क्षेपक कोष्ठकी दीवारसे तन्तुओं द्वारा बंधी हैं और ये तन्तु इतने बड़े हैं कि जब ये झिल्लियां तैरने लगती हैं तो वे तनकर उसे पकड़े रहते हैं और उसे इधर उधर खिसकने नहीं देते।

इसी तरह फुसफुसिया धमनी और वृहद् धमनीके मुहानेपर भी अर्धचन्द्राकार थैले हैं जो भीतरसे बाहरके रक्तके प्रवाहमें तो दब जाते हैं पर यदि रक्तका प्रवाह बाहरसे भीतरकी ओर होने लगता है तो भरकर इस तरह फूल जाते हैं कि रास्ता रुक जाता है। इस तरह रक्त बाहरसे भीतर नहीं आने पाता।

रक्तका दौरा लगातार हुआ करता है। वह एक क्षणके लिये भी बन्द नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि इस रक्त-प्रवाह-यन्त्रका कोई भी अंग क्षण भरके लिये भी खाली नहीं रहता अर्थात् प्रत्येक भाग हर क्षण भरा रहता है। इससे यदि सबसे पीछेके रक्तको हटनेका कहीं मार्ग नहीं है तो फिर आगेका रक्त पीछे कहां आ सकता है।

उदाहरणके लिये मान लीजिये कि मनुष्योंके एक दलको एक चक्करदार सड़कसे होकर जाना पड़ता है। सड़कपर स्थान स्थानपर फाटक बने हैं। प्रत्येक फाटकपर सिपाही पहरा दे रहे हैं जो लोगोंको केवल भीतर जाने देते हैं, बाहर नहीं आने देते। ऐसी अवस्थामें जब ठसाठस भीड़ घुसती चली जा रही है और प्रधान दरवाजेका सिपाही लोगोंको बराबर आगेको ही ढकेलता जा रहा है तब जो भीड़ आगे बढ़ गई है उसे पीछे मुडनेका अवसर कहां मिल सकता है। यदि धक्का खानेसे और फजीहतसे उसे बचना है तो आगे बढ़नेमें ही उसका कल्याण है। ठीक यही हालत आगे बढ़नेवाले रक्तकी है।

इससे यह परिणाम निकला कि रक्तकी इस प्रकारकी गति-

का प्रधान कारण हृदय ही है। शिराओंके थैले तो केवल सहायक मात्र हैं।

एक तीसरा कारण और भी है। नलियोंकी बनावट भी ऐसे ही तन्तुओंसे है जो कुछ न कुछ सदा आगेकी ओर सिकुड़ते रहते हैं और इस तरह रक्तको आगे बढनेमें सहायता पहुंचाते हैं। इसका वर्णन रक्तको ले जानेवाली नलियोंकी बनावटमें किया जायगा।

रक्त लेजानेवाली नालियोंकी बनावट—रक्त लेजानेवाली नलियां दो प्रकारके पदार्थोंसे बनी हैं। ये दोनों पदार्थ तीन तहमें जमे हैं। सबसे ऊपर तो रेशेदार तन्तुकी एक दीवार है। उसके बाद अनैच्छिक मांसपेशियोंकी एक तह है। मांसपेशियोंमें भी पीले रेशेदार तन्तुओंकी दीवार है। इन्हीं रेशेदार तन्तुओंके कारण इन नलियोंकी भीतरी दीवाल चिकनी रहती है जिससे रक्तके प्रवाहके मार्गमें किसी तरहकी बाधा उत्पन्न नहीं होती।

धमनी और शिरा दोनोंकी दीवारें प्रायः एकही किस्मके पदार्थसे बनी हैं। भेद केवल इतना ही है कि धमनीकी दीवालमें मांसपेशियां हर स्थानपर पाई जाती हैं और शिरामें कहीं कहीं मांसपेशियां नहीं भी होतीं। रेशेदार तन्तुकी तह भी शिराकी अपेक्षा धमनीमें अधिक मोटी होती है। धमनीकी दीवालकी अपेक्षा शिराकी दीवालमें श्वेत तन्तुओंसे लाल तन्तुओंकी संख्या अधिक रहती है। इन सब कारणोंसे धमनीकी दीवाल शिराकी दीवालसे कहीं मोटी होती है।

पीछे हम यह भी बतला आये हैं कि शिराओंमें स्थान स्थान-पर रक्तका प्रवाह एक ही ओर होनेमें सहायता पहुंचानेके लिये झिल्लीके थैले बने हैं जिन्हें कपाट कहते हैं। ये थैले सदा हृदयकी ओर खुलते हैं पर जो शिरायें हृदयसे ऊपर हैं उनकी दीवालके कपाट नीचेकी ओर खुलते हैं और जो नीचेकी ओर हैं उनके कपाट ऊपरकी ओर खुलते हैं।

केशिकाकी दीवार केवल एक सेलसे बनी है। न तो उसमें मांसपेशियां हैं और न रेशेदार तन्तु ही हैं। केशिकाकी दीवालमें छेद नहीं होता। धमनी जहां केशिका बनकर फैलती है वहां वह जाल बनाकर फैल जाती है। केशिकायें अन्धी होती हैं अर्थात् आगे खुलनेके लिये उनमें मुंह नहीं होता। पर उनकी दीवालें एक सेलसे निर्म्मित होनेके कारण इतनी पतली रहती हैं कि रक्तका रस उनमेंसे पसीज पसीजकर सेलोंसे जा मिलता है और उन्हें स्नान कराया करता है।

धमनीकी फड़क—जीवित अवस्थामें किसी धमनीको अंगु-लीसे दबाइये। आपको विदित होगा कि वह सिकुड़ती और फैलती है। हृदय जितनी बार फैलता और सिकुड़ता है रक्तको धमनियां उतनी ही बार फैलती और सिकुड़ती हैं। इसी सिकोड़को नब्ज या नाड़ी कहते हैं।

धमनीका स्पन्दन इस प्रकार होता है। फेफड़ोंसे शुद्ध रक्त आकर बायें क्षेपक कोष्ठमें भरता है और बायां क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ने लगता है। इससे रक्त वेगके साथ बृहद् धमनीमें प्रवेश

करता है। वृहद् धमनी पहलेसे ही रक्तसे भरी रहती है। इससे इस रक्तके लिये जगह बनानेके लिये धमनीको स्थान बनाना पड़ता है। धमनीकी मांसपेशियां अनैच्छिक तन्तुसे बनी हैं। इससे दबाव पाकर ये फैल जाती हैं। रक्त इनमें समा जाता है। थोड़े कालके बाद ये सिकुड़कर अपनी पूर्व अवस्थापर आनेका यत्न करने लगती हैं। इनका सिकुड़ना आरम्भ होता है और रक्त आगे बढ़ता है। इस रक्तको स्थान देनेके लिये धमनीका आगेका हिस्सा फैलता है। इसी तरहसे सिकुड़ना और फैलना लगातार लगा रहता है।

इस प्रकार वृहद् धमनी तथा उसकी शाखाओंमें सिकुड़ने तथा फैलनेकी लहरें एकके बाद दूसरी उत्पन्न होती रहती हैं। एक लहरके बाद दूसरी लहर पैदा होती है और उसके बाद तीसरी लहर। इसीको *नाड़ीका स्पन्दन* कहते हैं।

आप परीक्षा करके देखेंगे तो आपको विदित होगा कि नाड़ीका यह स्पन्दन केवल धमनियोंमें ही होता है। शिराओंमें इनका पता नहीं लगता। इसका प्रधान कारण यह है कि धमनियोंकी इतनी छोटी छोटी शाखायें हो जाती हैं कि केशिका तक पहुंचते पहुंचते इस स्पन्दनकी गति बहुत ही मन्द पड़ जाती है और शिराओं तक पहुंचते पहुंचते एक दमसे बन्द हो जाती है। यही कारण है कि यदि कभी धमनी कट जाती है तो रक्त उछल उछलकर बहता है और यदि शिरा कट जाती है तो रक्त धीमें धीमें एक चालसे बहता है, उछलता नहीं।

धमनी एक मिनिटमें उतनी ही बार फड़कती है जितनी बार एक मिनिटमें हृदय फड़कता है। बाहरसे नाड़ीके स्पन्दनका पता उन स्थानोंपर धमनीके स्पर्शसे लगता है जहां धमनीके ऊपर चर्बी और मांसका पिण्ड नहीं है।

इस तरह आपने देखा कि शरीरका सबसे प्रधान काम इसी रक्त-परिभ्रामक मार्ग द्वारा होता है। फिर भी ये केवल बाहरी उपकरण हैं। मुख्य काम तो उन सेलोंके भीतर होता है जिनको आप देखही नहीं पाते चाहे आपका यन्त्र अधिक तेजही क्यों न हो। उदाहरणके लिये आपके सामने हम एक मिसाल पेश करते हैं जो पढ़नेमें तो जरा भद्दी अवश्य मालूम होगी पर वास्तवमें ठीक मिलती जुलती है और हमारे कथनको पुष्ट करती है। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि आप बम्बई या कलकत्ता शहर गये और किसी ऊंचे शिखरपर चढ़कर नगरका निरीक्षण करने लगे। आप देखेंगे कि सड़कें जालकी तरह फैली हैं और उनके इर्द गिर्द मकानोंका सिलसिला जारी है। सड़कें आदमियोंकी भीड़, गाड़ियोंके ठेलमठेलसे जाम हैं पर घरोंके भीतर क्या होरहा है इसे आप नहीं देख सकते। इससे तत्काल आप सड़कोंकी ही प्रशंसा करेंगे कि सड़कोंपर कैसा काम हो रहा है, सड़कें कैसी भरी हैं। पर यदि आप विचार कर देखें तो आपको मालूम होगा कि सड़कोंको यह प्रधानता उन मकानोंके ही कारण है। मकानोंके अन्दर जो काम होरहा है उन्हींकी बदौलत इन सड़कों-पर इतनी भीड़ है।

ठीक यही बात आपके शरीरके अङ्गोंके साथ है। आप किसी अङ्गको ले लीजिये और उसकी परीक्षा कीजिये। आप देखेंगे कि रक्तकी नलियां जालकी भांति फैली हैं और सड़कोंका काम दे रही हैं पर इन जालोंके इर्दगिर्द मांसपिण्डकी दीवालें हैं जो ठीक मकानोंकी कतारोंकी तरह हैं। मांसकी इन दीवालोंके भीतर जो कुछ हो रहा है आप किसी भी तरह नहीं देख सकते पर वास्तवमें प्रधान काम वहीं हो रहा है। जिस तरह आपके नगरकी सड़कोंका प्रयोग कच्चा माल कारखानोंमें ढोने तथा तैयार माल कारखानोंसे बाहर ले जानेमें होता है पर सारा काम तो उन कारखानोंमें ही होता है, माल वहीं तैयार होता है, कुली वहीं काम करते हैं। ठीक उसी तरह रक्तकी धमनियां और केशिकायें कच्चा माल लेकर अङ्गोंमें पहुंचाती हैं, पर उसका प्रयोग उन अङ्गोंमें ही होता है।

हम कह आये हैं कि केशिकायें अन्धी होती हैं। इनका मुंह बन्द होता है। इसलिये रक्ताणु इनमेंसे बाहर नहीं निकल सकते। पर केशिकाओंकी दीवार इतनी पतली होती है कि रक्त-रस इनमेंसे चू चूकर अङ्गोंके सेलोंमें प्रवेश कर जाता है। पतली झिल्लियोंका यह धर्म है कि उनमेंसे तरल पदार्थ चू चूकर निकल जाता है और जो पदार्थ पानीमें घुल नहीं सकता वह उनमें लगा रह जाता है। इसकी जांच आप मजेमें कर सकते हैं। आप कहींसे चमड़ेकी एक झिल्ली लाइये और उसकी एक थैली बना डालिये। थोड़ीसी चीनी पानीमें डालकर उसमें भर दीजिये

और ऊपरसे उसका मुंह बांध दीजिये। थोड़ी देरमें आप देखियेगा कि पानी झिल्लीके बाहर होकर चूने लगता है। नीचे एक कटोरा रख दीजिये और चू चूकर जलको उसमें इकट्ठा होने दीजिये। जब जल बिलकुल चू जाय तो झिल्लीके थैलेको खोलिये। आप देखियेगा कि उसमेंसे चीनी गायब है। उसमें केवल वे ही पदार्थ मौजूद हैं जो पानीमें घुल नहीं सकते थे। अब कटोरेके पानीको चखिये। आप देखेंगे कि उसका स्वाद मीठा है। ठीक यही बात केशिकाओंके साथ भी है। केशिकाओंमें जो रक्त रहता है उसमें पौष्टिक पदार्थ घुला हुआ रहता है। यह पौष्टिक पदार्थ केशिकाओंकी दीवालसे छन छनकर सेलोंमें जाता है और उनका पोषण करता है। जिस भरी झिल्लीका उदाहरण हमने ऊपर दिया है उससे तथा केशिकाकी झिल्लीसे केवल इतना अन्तर है कि इनमें एक तरफ तो जहां पौष्टिक पदार्थ छन छनकर बाहर जाता है वहां सेलोंका कूड़ा कर्कट या विष इनमें आता रहता है। इसी तरहकी क्रियासे उदरमेंसे पौष्टिक खाद्य पदार्थ रक्तमें आता है तथा अशुद्ध रक्त फेफड़ेमें जाकर शुद्ध होता है।

शरीरके पोषणके लिये दो पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है—अन्न और स्वच्छ वायु। रक्त इन दोनों पदार्थोंको अङ्गोंके पास पहुंचाता है। अगले प्रकरणोंमें हम यही दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि रक्त इन पदार्थोंको कहांसे पाता है और किस तरह पाता है।

हम सबसे पहले हवाको लेंगे और दिखलावेंगे कि रक्तको हवा किस तरह मिलती है।

छठा प्रकरण

स्वास लेनेकी क्रिया

रक्तको क्रियाका वर्णन करते समय हमने जगह जगहपर यह बात लिखी है कि सेलें लगातार काम करती रहती हैं तथा इस तरह काम करनेकी अवस्थामें वे सदा टूटती फूटती भी रहती हैं। इनके फूटनेके समय अनेक तरहकी रसायनिक क्रियायें होती हैं जिनसे शरीरके भीतर अनेक तरहके पदार्थ बनते हैं। इनमेंसे बहुतसे पदार्थ तो ऐसे होते हैं जिनकी शरीरमें रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती बल्कि यदि वे अधिक काल तक शरीरमें रहें तो अनेक प्रकारसे वे शरीरको हानि पहुंचावें। इसलिये शरीरसे उनका निकल जाना अत्यन्त आवश्यक है और उनके निकालनेका प्रबन्ध भी किया गया है। शरीरकी अनेक इन्द्रियोंका यह काम ही है कि वे अनावश्यक और हानिकारक पदार्थोंको शरीरसे निकाल निकालकर रक्तको दिया करती हैं और रक्त उन्हें विविध मार्गों द्वारा शरीरसे बाहर निकाला करता है।

इस प्रकरणमें हम इसी बातपर विचार करेंगे कि यह क्रिया किस तरहसे होती है।

मिट्टीके किसी घड़ेमें चिराग जलाकर रख दीजिये और उसका मुंह बन्द कर दीजिये। आप जानते हैं कि स्वच्छ हवामें

आक्सिजन नामका एक पदार्थ होता है जो जीव धारणके लिये अत्यन्त आवश्यक होता है। जबतक आक्सिजन मिलता रहेगा प्राणीकी जीवन लीला चलती रहेगी। पर जिस समय इस पदार्थका अभाव हो जायगा जीवनका दीपक तुरन्त बुझ जायगा। घड़ेमें जबतक आक्सिजनवाली हवा वर्तमान रहेगी दीपक जलता रहेगा। पर जिस समय घड़ेकी हवा आक्सिजनसे शून्य हो जायगी दीपक बुझ जायगा। यहीं पर आपको यह भी जान लेना चाहिये कि प्राणी जिस प्रकार हवामेंसे आक्सिजन लेता है उसी तरह अपने शरीरसे कार्बोनिक ऐसिड गैस देता भी है। यह एक तरहका जहरीला पदार्थ है जो सेलोंके संघर्ष और टूटने फूटनेसे बनता है। चिराग या जलती आगका यह धर्म है कि वह आस पासके आक्सिजनको जला जलाकर कार्बोनिक एसिड गैस पैदा करती रहती है। जिस समय आक्सिजनका अभाव होजाता है और कार्बोनिक एसिड गैसकी प्रधानता होती है घड़ेका चिराग आपसे आप बुझ जाता है। घड़ेमेंसे चिराग निकाल लीजिये और उसमें एक जीवित चिड़िया बन्द कर दीजिये। थोड़ी देरके बाद घड़ा खोलकर देखिये तो आपको चिड़िया मरी मिलेगी। इसका कारण आक्सिजनका न मिलना और शरीरके सेलोंके टूटने फूटनेसे कार्बोनिक एसिड गैसका बन बनकर जमा होजाना है।

अब एक दूसरा घडा पानीसे भरकर लाइये और उसमें मछली डालकर घड़ेका मुंह बन्द कर दीजिये। आप देखेंगे कि मछली

तुरत मर नहीं जाती। पम्पकी सहायतासे घड़ेमेंसे थोड़ा पानी निकालकर उसकी परीक्षा कीजिये। आपको मालूम होगा कि पानीमें भी आक्सिजनकी मात्रा काफी है। इसी आक्सिजनके सहारे मछली जी रही थी। थोड़ी देरके बाद मछली मर जायगी। मछलीके मर जानेपर घड़ेका जल निकालिये और उसको परीक्षा कीजिये। अब उसमें आक्सिजन नहीं मिलेगा। इससे सिद्ध हुआ कि जलमें भी हवा रहती है और उसमें आक्सिजन रहता है और उस आक्सिजनको हम सांस द्वारा अपने शरीरमें खींचकर उसका प्रयोग कर सकते हैं।

अब मांसपेशीका एक टुकड़ा लीजिये। धमनी और शिराको आप अतिसहजमें पहचान सकेंगे। धमनीका रङ्ग गुलाबी होगा और शिराका रङ्ग नीला होगा। दूसरे यदि धमनी कट जाय तो उसमेंसे लाल रङ्गका रक्त उछल उछलकर निकलेगा पर यदि शिरा कट जाय तो उसमेंसे नीले रंगका रक्त निकलेगा और वह एक धारामें बहता जायगा, उछलेगा नहीं।

इस विभिन्नताका क्या कारण है? इसका पता लगानेके लिये पहले धमनीसे थोड़ासा रक्त निकाल लीजिये और उसकी परीक्षा कीजिये। रसायनिक परीक्षासे आपको विदित होगा कि उसमें अनेक तरहके गैस मौजूद है। पानीमें जितना आक्सिजन आपको मिलेगा उससे अधिक आक्सिजन आपको रक्तमें मिलेगा, कार्बोनिक एसिड गैस भी अधिक मिलेगा पर नाईट्रोजन कम मिलेगा। इसकी परीक्षा कर लेनेके बाद अब शिरासे थोड़ासा

रक्त निकालिये और उसकी भी उसी तरह रसायनिक परीक्षा कीजिये। शिराके रक्तमें भी वे ही पदार्थ मिलेंगे पर विपरीत परिमाणमें अर्थात् आक्सिजनकी मात्रा प्रायः नहींके बराबर रहेगी कार्बोनिक एसिड गैस बहुत बढ़ जायगा।

इस परीक्षासे आपको यह मालूम हुआ कि धमनीके रक्त तथा शिराके रक्तमें यद्यपि वे ही तीन पदार्थ—कार्बोनिक एसिड गैस, आक्सिजन तथा नाइट्रोजन—मौजूद हैं फिर भी उनकी मात्रा भिन्न भिन्न परिणाममें रहती है अर्थात् *धमनीके रक्तमें आक्सिजन अधिक रहता है और शिराके रक्तमें कार्बोनिक एसिड गैसकी मात्रा अधिक रहती है।*

धमनीके रक्तमें आक्सिजन काफी परिमाणमें रहता है और शिरामें उसका एकदम अभाव पाया जाता है। इससे यह विदित हुआ कि रक्त केशिकाओंमें आक्सिजन खोता है और कार्बोनिक एसिड गैस प्राप्त करता है।

केशिकाओंके बाद रक्त जिस समय आगे बढ़ता है नीले रंगका अशुद्ध दिखलाई देता है। शरीरके प्रत्येक अंगसे यह रक्त इकट्ठा होकर दो महाशिराओं द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठमें गिरता है। ग्राहक कोष्ठसे रक्त क्षेपक कोष्ठमें आता है और क्षेपक कोष्ठसे फुसफुसिया धमनी द्वारा फेफड़ेमें जाता है। इस समय तक रक्त अपवित्र या अशुद्ध रहता है। पर जिस समय रक्त फेफड़ेसे होकर फुसफुसिया शिरा द्वारा बायें ग्राहक कोष्ठमें आता है वह अपना नीला रंग छोड़ देता है, लाल बिम्ब हो जाता है। इससे

यह मालूम हुआ कि अशुद्ध रक्त फेफड़ेमें आकर शुद्ध होता है।

अब देखना यह है कि यह फेफड़ा क्या पदार्थ है और इसमें रक्त किस प्रकार शुद्ध होता है।

फेफड़ा

"हमारे शरीरकी रचना" शीर्षक प्रकरणमें हमने बतलाया है कि धड़के ऊपरी भाग अर्थात् छातीको काटकर देखियेगा तो पसलियोंके नीचे दोनों तरफ दो थैले लटकते हुए दिखाई देंगे। इन्हीं थैलोंको *फेफड़ा* कहते हैं। दाहिना फेफड़ा बायें फेफड़ेसे कुछ चौड़ा और भारी होता है। इसका रंग गौदुमी अर्थात् सफेद और लाल मिला हुआ होता है। यह नीचेकी ओर तो चौड़ा होता है पर ज्यों ज्यों ऊपर चलता है संकीर्ण होता जाता है और अन्तमें नोकीला हो जाता है पर चिपटा रहता है। इसकी परीक्षाके लिये किसी मृत प्राणीके फेफड़ेको ले लीजिये, किन्तु खयाल रहे कि हृदय तथा फेफड़ेमें लगी हुई वह नली जो ऊपरसे आती है (और जिसका वर्णन आगे चलकर मिलेगा) फेफड़ेसे अलग न की जाय। फेफड़ेको उलट पलटकर अच्छी तरह देखिये। आप देखेंगे कि वह एक तरफ तो पतला और कम चौड़ा है तथा दूसरी ओर मोटा और अधिक चौड़ा है। पतले और कम चौड़े भागको *शिखर* कहते हैं तथा मोटे और अधिक चौड़े भागको *तला* कहते हैं। फेफड़ेके नीचेकी तरफ अर्थात् तलीके

नीचे एक परदा होता है जिसके सहारे यह रहता है और जो धड़के ऊपरी भारसे नीचेके भागको अलग करता है। नलियोंके आने जानेके लिये कई छेद होते हैं। दोनों फेफड़ोंकी नलियां गहरी होती हैं। पर दाहिने फेफड़ेमें दो दरारें होती हैं जिनसे फेफड़ा तीन भागोंमें बट जाता है। पर बायें फेफड़ेमें केवल एक दरार होती है, इससे बायां फेफड़ा केवल दो ही भागोंमें बटा रहता है [देखो चित्र नं० ४]।

गौरसे देखनेसे आपको विदित होता कि फेफड़ेका रंग गौदुमी और कुछ नीला भी है तथा ऊपर खूब चिकना है और उसपर कुछ चित्तियां पड़ी हैं। अब आप फेफड़ेको हाथमें लेकर दबाइये तो वह बड़ा ही मुलायम और स्पंजी अर्थात् सुराखदार मालूम होगा। यदि आप चाकू या कैंचीसे फेफड़ेको सावधानीसे काटें तो उसके भीतरसे पानी जैसा कुछ तरल पदार्थ निकलेगा। यह रक्तका शेष अंश है जो शुद्ध होनेके लिये यहां आया था। फेफड़ेमें आदिसे अन्त तक छेद ही छेद दिखाई देंगे। ये छेद फुसफुसिया धमनी तथा वायुकणोंके मुंह हैं जो फेफड़ेमें जालकी भांति फैले रहते हैं [देखो चित्र नं० १५]।

फेफड़े एक तरहकी भाथी हैं। इनमें हवा भरी रहती है। फेफड़ेको आप पानीमें डालकर परीक्षा कीजिये वह तैरने लगेगा। पर यदि फेफड़ेमें कोई रोग लग गया है तो वह पानीमें डालते ही डूब जायगा, कारण कि रोगके कारण फेफड़ा ठोस हो जाता है और उसमें वज़न आ जाता है। ठोस

हो जानेसे फैफड़ेमें हवा कम समाती है। कम हवा जानेसे आक्सिजन काफी परिमाणमें नहीं मिलता। इसीलिये निमोनिया आदि रोगोंमें चटपट मृत्यु हो जाती है।

फेफड़ा हलका तभी रह सकता है जब वह वायुसे भरा हो। इस कारण लड़कोंके फेफड़े जन्मसे पहले पानीमें नहीं तैर सकते क्योंकि जन्मके पहले बालक स्वास नहीं लेता। यदि मरे हुए उत्पन्न बालकके फेफड़ेको जलमें डालियेगा तो वह तुरन्त डूब जायगा। पर यदि लड़का पैदा होते ही मरा है और एक भी स्वास ले लिया है तो उसका फेफड़ा इतना हलका हो जायगा कि वह जलमें नहीं डूबेगा।

प्रत्येक फैफड़ेके ऊपर एक झिल्लीदार परदा रहता है। यह परदा दोहरा रहता है। एक तरफ तो यह फेफड़ेको ढके रखता है और दूसरी ओर यह छातीकी दीवारसे सटा रहता है। यह अत्यन्त चिकना और भीगा रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि जब फेफडा हवाके भरनेके कारण फैलता है तो इसे किसी तरहकी रगड़ नहीं लगती और न इसे हानि पहुंचती है।

यही फेफड़ेकी बनावट है। इसीमें एक तरफसे अशुद्ध रक्त और दूसरी तरफसे आक्सिजन भरी हवा आती है और परस्पर परिवर्तन करती है अर्थात् रक्त अपना अशुद्ध अर्थात् जहरीला पदार्थ वायुको दे देता है और वायुसे साराका सारा आक्सिजन ले लेता है। हम पीछे बतला आये हैं कि फुसफुसिया धमनी द्वारा दाहिने क्षेपक कोष्ठसे अशुद्ध रक्त फेफड़ोंमें जाता है और शुद्ध

होता है। अब यहांपर यह लिख देना जरूरी है कि फेफड़ा आक्सिजनदार हवा कहांसे पाता है।

स्वास-मार्ग

यह तो हम सब लोग जानते हैं तथा अनुभव करते हैं कि हम लोग अधिक करके नाक द्वारा और थोड़ी थोड़ी हवा मुंह द्वारा बराबर अपने शरीरके भीतर पहुंचाया करते हैं। स्वास नाकसे होकर कण्ठमें जाती है, कण्ठसे गले द्वारा वह स्वरयन्त्रमें प्रवेश करती है, स्वरयन्त्रसे टेंटुएमें प्रविष्ट होती है, टेंटुएसे वायुप्रणालीमें प्रवेश करती है और अन्तमें वायुप्रणाली द्वारा वह फेफड़ेके अतिसूक्ष्म वायुरन्ध्रोंमें जाकर भर जाती है [देखो चित्र नं० १६]।

इस विवरणसे विदित हुआ कि बाहरसे वायु फेफड़े तक पहुंचनेके लिये पांच मार्गोंका अवलम्बन करती है :—

१—नासिकाका छेद

२—गला या कण्ठ

३—स्वरयन्त्र

४—टेंटुआ

५—वायुप्रणाली

इस स्थलपर इन सबोंका संक्षिप्त विवरण दे देना अनुचित नहीं होगा।

नासिकाका छेद—यदि आप शीशेमें अपना चेहरा देखें तो सिरके नीचले भागमें मुंहके ऊपर दोनों आंखोंके बीचमें सामने-

को निकला हुआ एक लम्बा आकार दिखाई देगा। इसीको नाक या नासिका कहते हैं। अपनी पाठ्य पुस्तकोंमें आपने प्रायः पढ़ा होगा कि नाकका काम सूंघना है और आपके शिक्षकोंने भी मोटी तरहसे आपकी इन्द्रियोंका काम बतलाते हुए बतलाया होगा कि नाकका काम सूंघना है। पर इससे भी एक प्रधान काम नाकको करना पड़ता है। वह है वायु द्वारा आक्सिजन फेफड़ोंमें पहुंचाना और फेफड़ोंसे अशुद्ध पदार्थ बाहर निकालना। नासिकाके छिद्रोंका यह प्रधान काम है।

नाककी बनावट दो प्रकारके पदार्थोंसे है। नाकके सामनेका भाग दबाइये। वह दब जायगा और मुलायम मालूम देगा। यह भाग कार्टिलेजका बना है। पीछेका भाग कड़ा मालूम होगा। यह भाग हड्डियोंसे बना हुआ है। इसकी तलीमें दो छिद्र हैं जिन्हें *नथूने* कहते हैं।

नासारन्ध्रोंमेंसे देखनेसे मध्य रेखाके इधर उधर एक एक नली दिखाई देती है इसे *नासा-गुहा* कहते हैं। दोनों नासा-गुहाओंके बीचमें एक परदा खड़ा है। इस परदेका अगला भाग कार्टिलेज और पिछला भाग हड्डियोंका बना है। यह परदा बाईं ओर कुछ झुका रहता है। इस परदेकी पीठपर श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है।

नासा-गुहाके ये प्रधान भाग हैं :—

(१) फर्श (२) छत (३) भीतरी दीवाल (४) बाहरी दीवाल (५) नासारन्ध्र अर्थात् सामनेकी दीवाल (६) पीछेका द्वार जो कण्ठमें खुलता है।

फर्श हड्डियोंसे बना रहता है। यह पीछे कण्ठकी ओर ढालवां रहता है। इसके पिछले किनारेपर कोमल तालु लगा रहता है।

नाककी बाहरी दीवालका अगला भाग मुलायम कार्टिलेजसे बना रहता है। इसके ऊपर बालदार चमड़ेका परदा चढ़ा रहता है। यह बाल एक विशेष प्रयोजनसे हैं। स्वास लेते समय जो कुछ गरदा या धूल नाकमें समा जाती है उसे यह बाल साफ करके भीतर जानेसे रोक देते हैं। इसलिये यह बाल एक प्रकारके ब्रश हैं जो हवाको साफ करके तब कहीं भीतर जाने देते हैं। इसकी भीतरी दीवाल हड्डियोंकी बनी हुई है। इसपर भी चमड़ेकी चादर चढ़ी है।

नासाका पिछला द्वार कण्ठमें जाकर खुलता है। यह चौकोर होता है। कोमल तालुकी आड़में रहनेके कारण मुंह खोलनेपर यह दिखाई नहीं देता।

हम ऊपर कह आये हैं कि नाककी दीवालपर शुरूसे अन्ततक श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है। इस श्लैष्मिक कलामें एक विशेषता यह होती है कि इसमें रक्तकी नलियां बहुत होती हैं। दीवालपर केशिकाओंका जाल बिछा रहता है। इससे एक लाभ यह होता है कि जो हवा नाकके द्वारा भीतर प्रवेश करती है वह रक्तकी गर्मीसे गरम होकर तब फेफड़ोंमें पहुंचती है। रक्तकी गर्मीसे हवाकी नमी गायब हो जाती है। इससे हवा हानिकर नहीं रह जाती। यदि रक्तकी गर्मीसे हवा गरम होकर भीतर प्रवेश न करे तो इसकी नमींके प्रभावसे भीतरकी नसें फूल जायं और रक्तका मार्ग छोटा हो जाय।

जिस समय हम स्वास लेते हैं हवा नासारन्ध्रों द्वारा नासिकामें प्रवेश करती है। नासिकाके मध्य और नीचेकी सुरंगोंसे होती हुई पीछेके द्वारसे वह कण्ठमें प्रवेश करती है। कण्ठसे स्वरयन्त्र और स्वरयन्त्रसे टेंटुए तथा टेंटुएसे वायुप्रणाली द्वारा फेफड़ेमें घुसती है। यह तो वायुकी भीतर घुसनेकी क्रिया है। बाहर आनेकी क्रियामें वायु टेंटुएसे होकर स्वरयन्त्रमें आती है। स्वरयन्त्रसे कण्ठोंमें होती हुई हवा नासिकामें पहुंचती है और वहांसे नासारन्ध्रों द्वारा बाहर निकल जाती है। जब हम मुंहसे स्वास लेते हैं तब हवा सीधे कण्ठसे होकर भीतर जाती है और बाहर आती है।

जहांतक हो हमें नासिका द्वारा ही सांस लेना चाहिये। मुंह द्वारा सांस लेनेसे न तो हवाको गरम होनेका अवसर मिलता है और न उसमें मिली हुई गन्दगी ही दूर हो सकती है। जो लोग मुंहसे सांस लेते हैं उन्हें सरदीकी बीमारी प्रायः सताया करती है। हवाके साथ गन्दगीके चले जानेसे फेफड़ेकी बीमारी उभड़नेकी भी सम्भावना रहती है।

कण्ठ—मुंहका वह भाग जो महरायोंके पीछे है, कण्ठ कहलाता है। इसीमें नासिकाका पिछला छेद खुलता है और स्वरयन्त्र आरम्भ होता है।

स्वरयन्त्र—स्वरयन्त्र एक कोष्ठ है जो ग्रीवाके ऊपरी भागमें कण्ठके सामने रहता है। इसका ऊपरका भाग कण्ठसे सटा रहता हैं और इसके नीचेके भागसे टेंटुएका आरम्भ होता है।

स्वरयन्त्र अन्नप्रणालीके पीछे रहता है। यह बहुत ही मुलायम कार्टिलेजोंसे बना होता है। इसके मुखद्वारपर भी एक कार्टि-लेज रहता है जो ढकनेका काम देता है। जब हम भोजन करने लगते हैं तो यह ढकना स्वरयन्त्रपर गिर जाता है और अन्नको उसके भीतर नहीं जाने देता। जब हम बोलते हैं तो हवाका झोंका स्वरयन्त्रसे होकर बाहर निकलता है। उस समय स्वरयन्त्रका द्वार खुल जाता है। यही कारण है कि भोजनके समय अधिक नहीं बोलना चाहिये। यदि मौन होकर भोजन किया जाय तो और भी उत्तम है। भोजन करते समय बोलनेसे भय रहता है कि हवाके झोंकेसे कहीं स्वरयन्त्रका ढकन हट न जाय और अन्नका एकाध कण स्वरयन्त्रमें न चला जाय। हम ऊपर कह आये हैं कि अन्नप्रणाली और स्वरयन्त्र बराबरमें हैं। स्वरयन्त्रके ऊपर एक ढकना रहता है जो भोजन करते समय स्वरयन्त्रका मुंह बन्द कर देता है। पर जब भोजन करते समय हम बोलते हैं तो हवाका झोंका बाहर निकलता है और स्वरयन्त्र खुल जाता है। उस समय स्वरयन्त्रमें अन्नके प्रवेशका डर रहता है।

स्वरयन्त्रकी भीतरी बनावट विचित्र तरहकी होती है। जिस कार्टिलेजसे इसका ऊपरी भाग बना रहता है उसमें श्लैष्मिक कलाके दो झोले रहते हैं। ऊपरके झोलेमें बालदार रेशे रहते हैं। ये रेशे ऊपरकी तरफ झुके रहते हैं। यदि कोई वस्तु स्वरयन्त्रमें चली जाती है तो ये रेशे उसे फौरन बाहर फेंक देते

हैं। नीचेवाले झोलोंमें भी इसी तरहके बालदार रेशे रहते हैं। इन रेशोंका सम्बन्ध स्वरसे है।

टेंटुआ—जरा अपनी गर्दन ऊपरको उठाइये और उसे तनेन कीजिये। इसके बाद अपने हाथको ऊपर ले जाइये और मध्यग्रीवाके ठीक सामने टटोलिये। आपको ऊपरसे नीचे तक एक कड़ी चीज मालूम होगी जिसकी बनावट कड़ी कड़ी मुद्रियोंकी सी प्रतीत होगी। इसीको टेंटुआ कहते हैं। इसका ऊपरी भाग स्वरयन्त्र है और नीचेका भाग वायुप्रणाली है। टेंटुए-की दीवार कार्टिलेजोंकी बनी होती है। कार्टिलेजोंकी मुदरियां एकके ऊपर एक जमी रहती हैं। छल्लोंकी भीतरी तह श्लैष्मिक झिल्लीसे ढकी रहती है। छातीमें जाकर टेंटुआ दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। इसे वायुप्रणाली कहते हैं।

वायुप्रणाली—वायुप्रणालीकी रचना ठीक टेंटुएकी भांति होती है। दोनों फेफड़ोंके लिये दो वायुप्रणालियां हैं। ये वायु-प्रणालियां फेफड़ोंमें जाकर खुलती हैं और अति सूक्ष्म वायु-प्रणालियोंका जाल बनाकर फेफड़ेमें फैल जाती हैं [देखो चित्र नं० १२]।

फेफड़ेकी रचना—फेफड़ेके अनेक छोटे छोटे अंश होते हैं जो सौत्रिक तन्तुओं द्वारा आपसमें जुटे रहते हैं। प्रत्येक खण्डमें वायुप्रणालियोंका जाल बिछा रहता है जिसे *वायुमन्दिर* कहते हैं। वायुमन्दिरकी दीवालें सेलोंसे बनी रहती हैं। फेफड़ेके प्रत्येक अङ्गमें रक्तकी सूक्ष्म नलियां और केशिकायें रहती हैं। ये

सब सौत्रिक तन्तुओं द्वारा आपसमें बंधी रहती हैं। इस तरहके अनेक खण्डोंके आपसमें जुटनेसे फेफड़ा बनता है।

वायुमन्दिर—हम ऊपर कह आये हैं कि फेफड़ेमें सहस्रों-खण्ड होते हैं और प्रत्येक खण्डमें वायुप्रणालीके: जाल बिछे रहते हैं। इसीको वायुमन्दिर कहते हैं। वायुमन्दिर एक प्रकारका मकान है और इस जालके प्रत्येक कण इस मकानके कमरे हैं।

वायुमन्दिरकी रचना शहतूतसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। पेड़से एक शहतूत तोड़िये। तोड़ते समय इस बातका ख्याल रखिये कि जिस डण्ठलके सहारे वह पेड़से लगा रहता है वह टूटने न पावे। इसे सामने रख लीजिये और आपको वायु-प्रणाली, वायुमन्दिर तथा वायुमन्दिरके कमरोंका भेद मालूम हो जायगा। जिस डण्ठलसे शहतूत पेड़से लटक रहा था वह तो वायुप्रणाली है, शहतूतका फल वायुमन्दिर है और शहतूतके प्रत्येक उभड़े हुए दाने वायुमन्दिरकी कोठरी हैं। इस प्रकार

डण्ठल=वायुप्रणाली।

शहतूतका फल=वायुमन्दिर।

शहतूतके उभड़े दाने=वायुमन्दिरकी कोठरियां या वायु कोष्ठ।

वायुकोष्ठ—इनकी शकल अर्ध-गोलाकार होती है। इनकी दीवार पतली और चिपटी सेलोंसे बनी है। सेलोंके बाहर पीले सौत्रिक तन्तुकी एक पतली तह रहती है। इसी तहमें रक्त-

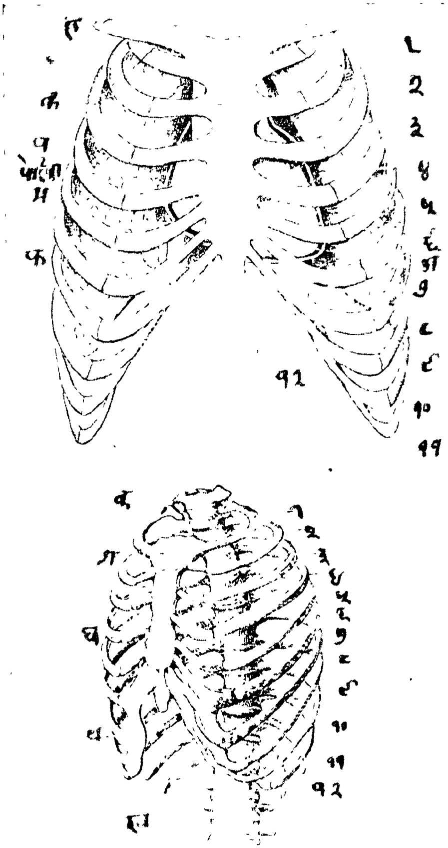

चित्र नं० १७

चित्र नं० १७ पहली शकलमें पसलियोंकी प्राकृत अवस्था दिखलायी गयी है।

दूसरी शकलमें सांस खींचनेपर पसलियोंकी जो अवस्था हो जाती है वह चित्र दिखलाया गया है।

चित्र नं० १५

चित्र नं० १६

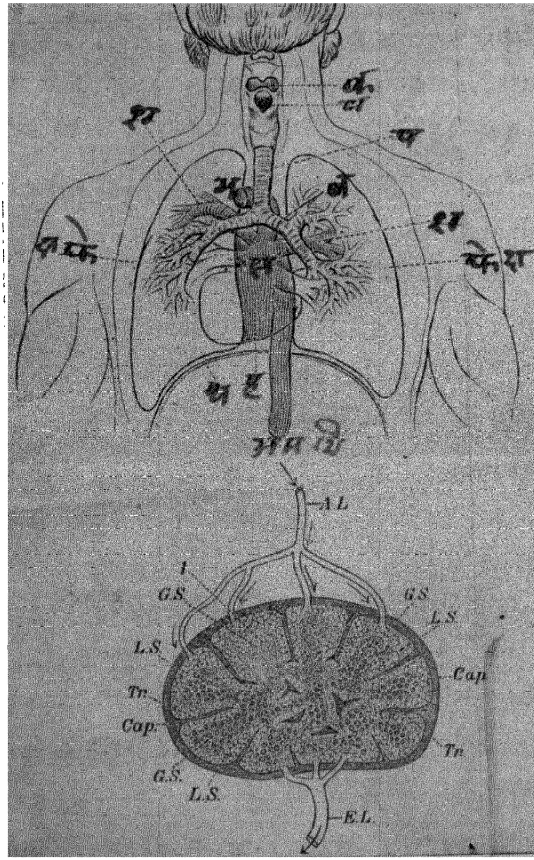

चित्र नं० १५ वायुप्रणालीका दृश्य

(क) मुंह (च) ढक्कन (प) वायुप्रणाली (ब फे) बायां फेफड़ा, (फे दा) दाहिना फेफड़ा (भ) महाधमनी (ह) हृदय (अमशि) अधोगा महाशिरा (श) फुसफुसिया धमनी (स) फुसफुसिया शिरा

चित्र नं० १६—केशिकाओंका जाल (AL) मार्गसे रक्त प्रवेश

केशिकाओंका एक जाल फैला रहता है। इन दोनोंके बीचमें केवलमात्र अन्तर इनकी दीवालोंका रहता है [देखो चित्र नं० १५ (ख)]।

यहांतक तो हमने वायु ले जानेवाली भिन्न भिन्न नलियोंका वर्णन किया है और यह दिखलाया है कि फेफड़ेतक हवा इनके द्वारा किस तरह पहुंचती है। अब आगे हम यह दिखलानेका यत्न करेंगे कि सांस लेनेपर फेफड़ेकी क्या दशा हो जाती है और उसके आस पासके अङ्ग किस अवस्थाको प्राप्त होते हैं।

श्वास लेनेकी एक क्रिया दो अवस्थाकी पूर्तिसे पूरी होती है अर्थात् पहले हम सांस भीतर खींचकर फेफड़ोंमें ले जाते हैं, फिर हम उस सांसको छोड़ते हैं और नासिका द्वारा बाहर निकालते हैं।

भीतर सांस खींचनेकी क्रियाको प्रश्वास कहते हैं और बाहर सांस छोड़नेकी क्रियाको निःश्वास कहते हैं।

सांस लेनेमें क्या होता है अब इसे देखिये। किसी व्यक्तिको नङ्गे बदन सामने बैठाइये और उससे कहिये कि वह जरा खींच-कर सांस ले। आप देखेंगे कि उसकी छाती या सीना पहलेकी अपेक्षा बढ़ जाता है। इसकी जांच आप फीतेसे नापकर कर सकते हैं। यदि आपको स्मरण होगा तो आपका दरजी कपड़े (कोट) का नाप लेते समय सीनेके दो नाप लेता है। एक साधारण और दूसरा फुलाकर। यदि आप उससे पूछेंगे तो वह इतना अवश्य बतला देगा कि दो नाप न लेनेसे सीना छोटा

बड़ा हो जाता है पर असली बात वह नहीं बतला सकता। जिस समय हम सांस भीतर खींचते हैं सीना बढ़ता है और जिस समय हम सांस बाहर फेंकते हैं सीना घटता है। इसी लिये दरजी दोनों नाप लेता है। अस्तु, हवाका प्रवेश जिस समय फेफड़ोंमें होता है फेफड़े बढ़ जाते हैं, उनकी समाईके लिये अधिक स्थानकी आवश्यकता पड़ती है। यदि आप सामनेसे किसी आदमीके सीनेका निरीक्षण करते रहें तो आप देखेंगे कि फेफड़ेके लिये कैसे घर बन जाता है। पहले तो आप देखेंगे कि सीनेकी मध्य रेखा पसलियोंके सहित उभरकर सामने चली आती है। इससे आगे पीछेसे स्थान पहलेकी अपेक्षा अधिक हो जाता है। वक्षोऽस्थिके साथ पसलियां तन जाती हैं। इससे बगलमें भी स्थान हो जाता है। उधर नीचेकी ओर उदर और छातीके बीचमें जो दीवार खड़ी है वह नीचेकी ओर दबती है। इससे उदर यकृत आदि अङ्ग सामने निकल आते हैं। इनके दबनेसे नीचेकी तरफ भी स्थान मिल जाता है। यह सब बातें आप अपनी आंखों देख सकते हैं। फेफड़ेके लिये काफी स्थान मिल जानेसे फेफड़ा हवा पाकर फैलने लगता है और पूरी तरह फैल जाता है। इसके बाद वह पुनः सिकुड़ने लगता है और यथास्थान हो जाता है। आपके सामनेका आदमी जब सांस बाहर फेंकने लगता है तब उसकी छातीकी गति गौरसे देखिये। आप देखेंगे कि सारे अङ्ग धीरे धीरे अपनी पहली अवस्थापर आ जाते हैं [देखो चित्र नं० १७]।

इस तरह प्रत्येक प्रश्वासमें सोना बढ़ जायगा और प्रत्येक निःश्वासमें वह घटकर पहली अवस्थाको पहुंच जायगा। जिस समय हम सांस लेते हैं वायुमन्दिरके प्रत्येक कोष्ठमें हवा भर जाती है और जिस समय हम सांस बाहर फेंकते हैं वायुमन्दिरके प्रत्येक कोष्ठकी हवा बाहर निकल आती है। पर इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि जिस समय हम निःश्वास लेते हैं उस समय फेफड़ा हवासे एकदम खाली हो जाता है। वायुका एक परिमाण फेफड़ेमें सदा भरा रहता है। वह फेफड़ेसे कभी भी अलग नहीं होता। प्रश्वास द्वारा जो अधिक हवा हम फेफ़ड़ेके भीतर ले जाते हैं वही निःश्वास द्वारा बाहर आती है।

हम जितना जोरसे सांस लेंगे वायुमन्दिरके कोष्ठोंमें हवा उतनी ही अधिक प्रविष्ट होगी और हमारा सीना उतना ही अधिक उभड़ेगा। यदि हम भरपूर सांस नहीं लेते और वायुमन्दिरके प्रत्येक कोष्ठ हवा पाकर नहीं फूलते तो कुछ दिनके बाद वे बेकाम हो जायंगे। इसलिये हमें सदा जोरसे सांस लेना चाहिये जिससे वायुमन्दिरके प्रत्येक कोष्ठमें हवाका प्रवेश हो सके।

साधारणतः स्वस्थ मनुष्य प्रति मिनिट १६ से २० बार तक सांस लेता है। पर लड़के इससे अधिक संख्यामें सांस लेते हैं। जिस समय शारीरिक श्रम अधिक करना पड़ता है उस समय भी सांस अधिक लेना पड़ता है। इसका कारण यह है कि शारीरिक परिश्रम करते समय सेलोंका तोड़ फोड़ अधिक होता है।

इससे कार्बोनिक एसिड गैस अधिक बनता है। कार्बोनिक एसिड गैसके मिल जानेसे रक्त जल्दी अशुद्ध हो जाता है और उसे शुद्ध करनेके लिये अधिक आक्सिजन मिली हवाकी आवश्यकता पड़ती है। आक्सिजन मिली हवाको जल्दी जल्दी पहुंचाने तथा कार्बोनिक एसिड गैसको बाहर लानेके लिये जल्दी जल्दी सांस लेनेकी आवश्यकता पड़ती है।

यदि आप इस क्रियाको अपनी आंखों देखना चाहते हैं तो आप किसी मृत प्राणीके फेफड़ेको ले आइये। इस बातका ध्यान रखिये कि फेफड़में छेद न किया गया हो और टेंटुयेका कुछ भाग उस समय भी फेफड़ेके साथ हो। फेफड़ा जमीनपर अपने सामने रख लीजिये और बाइसिकिलके पम्प या फुटबालके पम्पसे टेंटुयेमें हवा भरिये। यदि पम्प न मिले और आपको कोई परहेज न हो तो आप टेंटुयेको अपने मुंहमें लगाकर उसमें हवा फूंकिये। आप देखेंगे कि ज्यों ज्यों हवा भीतर जाती है फेफड़ा फूलता जाता है। जहां जहां फेफड़ा अबतक पिचका था वह सब स्थान हवासे भरकर फूल जायगा। खुब अच्छी तरह हवा भरिये। जबतक फेफड़ा अच्छी तरह फूल न जाय हवा भरना बन्द न कीजिये। जब आपने देख लिया कि अब फेफड़ेमें हवाकी गुञ्जायश नहीं है तो पम्प निकाल लीजिये और आप देखेंगे कि साथ ही फेफड़ा पिचकने लगता है और धीरे धीरे पिचककर उसी तरहका हो जाता है जैसा पहले था, जब आप उसे ले आये थे। एक

बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि जीवित अवस्थामें फेफड़ेमें कुछ न कुछ हवा सदा बनी रहती है। इसलिये वह इतना पिचका नहीं दिखाई देता जितना मूल अवस्थामें रहता है क्योंकि निर्जीव होते ही फेफड़ेसे हवाका भाग गायब हो जाता है और वह एक दमसे पिचक जाता है।

इतना लिखनेके बाद अब हमें यह भी लिख देना चाहिये कि हवामें कौनसे तत्व रहते हैं और वे हमारे लिये किस प्रकार उपयोगी हैं। जो हवा हम सांस द्वारा फेफड़ेमें ले जाते हैं तथा जो हवा हम फिर बाहर ले आते हैं उन दोनों हवामें एक ही पदार्थ मौजूद है, भेद है केवल मात्राका। जैसे, स्वच्छ हवामें भी आक्सिजन, नाइट्रोजन और कार्बोनिक एसिड गैस पायी जाती हैं और जो अशुद्ध हुवा सांस द्वारा हम बाहर फेंकते हैं उसमें भी येही पदार्थ विद्यमान रहते हैं। जो शुद्ध हवा हम भीतर ले जाते हैं उसमे आक्सिजन अधिक रहती है और भीतरसे जो अशुद्ध हवा हम बाहर लाते हैं उसमें कार्बोनिक एसिड गैस अधिक रहती है। नाइट्रोजनकी मात्रा दोनोंमें बराबर रहती है। अशुद्ध हवामें जहरीले पदार्थ भी पाये जाते हैं जो सेलोंके तोड़ फोड़ और रसायनिक क्रियासे बन जाते हैं। स्वच्छ हवामें इनका सर्वथा अभाव रहता है।

आक्सिजन हमारे जीवनके लिये अत्यन्त आवश्यक है। यदि हमको आक्सिजन न मिले तो हम मर जायं। भोजनके पदार्थों द्वारा भी हमें थोड़ी बहुत आक्सिजन मिलती है पर सबसे अधिक

आक्सिजन हमें हवा द्वारा ही मिलती है। इसीलिये हमें स्वच्छ हवाकी अधिक आवश्यकता पड़ती है। जहां स्वच्छ हवा पर्याप्त परिमाणमें नहीं मिलती वहां शीघ्र ही दम फूलने लगता है और बहुधा लोग मर जाते हैं। मोपला ट्रेन दुर्घटना इसी कारण हुई थी। एक डब्बेमें इतने मोपले भर दिये गये थे कि सबको स्वच्छ हवा नहीं मिल सकी। स्वच्छ हवाकी कमीके कारण आक्सिजन भी पर्याप्त नहीं मिली। कार्बोनिक एसिड गैस बढ़ती गई और जब उसका जहर रुधिरमें पूरी तरहसे व्याप गया तो वे धड़ाधड़ मरने लगे। यही कारण है कि हमें मुंह और नाक खोलकर सोनेकी शिक्षा दी जाती है। नाक खुली रहनेसे स्वच्छ हवा नथुनों द्वारा फेफड़ोंमें पहुंचा करेगी और काफी परिमाणमें आक्सिजन दिया करेगी तथा कार्बोनिक एसिड गैसका जहर निकालकर फेंका करेगी। यदि हम नाक और मुंह ढककर सोते हैं तो बाहरसे साफ हवाका जाना तो रुक जाता है। हम बार बार वही हवा सांस द्वारा भीतर ले जाते हैं जिसे हम बाहर फेंकते हैं। जो हवा भीतरसे बाहर आती है उसमें आक्सिजनकी मात्रा बहुतही कम रहती है। बाहरकी हवाका संसर्ग न होनेसे वही हवा हम फिर सांस द्वारा भीतर ले जाते हैं। दो तीन बारमें इसकी आक्सिजन खतम हो जाती है और कार्बोनिक एसिड गैसही इसमें भी रह जाती है। आक्सिजन न मिलनेसे हमारा दम घुटने लगता है। इसलिये हमें नाक और मुंह बन्द करके कभी नहीं सोना चाहिये।

इसपर लोग एतराज करते हैं कि बहुतसे ऐसे लोग मिलते हैं जो सदा मुंह और नाक ढककर सोते हैं पर कभी एक बार भी नहीं मरते। इसका एक कारण है। चाहे ओढ़ना कितना भी मोटा क्यों न हो उसमें सूराख अवश्य रहता है। उस सूराख द्वारा कुछ न कुछ साफ हवा भीतर जाया करती है। इससे कुछ काम चलता है और मरनेकी नौबत नहीं आती। पर इतना तो अवश्य देखा गया है कि जो लोग नाक और मुंह ढककर सोते हैं तथा कमरेकी खिड़कियां एक दमसे बन्द करके सोते हैं वे प्राय: अस्वस्थ रहते हैं और उनके फेफड़े तो अवश्य कमजोर रहते हैं। यदि इसकी परीक्षा करना चाहते हैं तो शीशेका कमरा बनवाकर उस कमरेमें किसीको बन्द कर दीजिये। थोड़ी ही देरमें उसका फल मालूम हो जायगा। अथवा जैसा हमने पहले लिखा है कि किसी घड़ेमें जीती चिड़िया रखकर घड़ेका मुंह बन्द कर दीजिये और चार घण्टे के बाद घड़ेका मुंह खोलकर देखिये तो चिड़िया मरी मिलेगी।

जिस तरह आक्सिजन हमारे जीवनके लिये उपयोगी और आवश्यक है उसी तरह कार्बानिक एसिड गैस हमारे जीवनके लिये अनावश्यक और हानिकर भी है। यदि हमारे शरीरमें इस गैसकी मात्रा बढ़ जाय तो क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकते। हमारे शरीरमें कार्बोनिक एसिड गैस सदा बना करती है। यह गैस रक्त द्वारा फेफड़ोंमें आती है और जो हवा हम बाहर फेंकते हैं उसमें मिलकर वह बाहर चली जाती है। इसलिये

इस गैसको शरीरसे बाहर निकालनेके लिये भी हमें सांस द्वारा हवा भीतर ले जाने और बाहर ले आनेकी आवश्यकता है। पर केवल हवासे ही काम नहीं चल सकता बल्कि आक्सिजन भरी हवाको भीतर ले जानेसे ही हमारा काम चल सकता है। इसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

अभी हमने लिखा है कि शरीरमें कार्बोनिक एसिड गैस बनती है। उसे सांस द्वारा बाहर निकालनेके लिये हमें इस बातकी आवश्यकता पड़ती है कि हम पहले आक्सिजनसे मिली हवा सांस द्वारा फेफड़ोंमें भरें। सरसरी तौरसे पढ़नेपर यह भ्रमात्मक मालूम होता है क्योंकि एकका दूसरेसे कोई भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। पर आगे हम जो कुछ लिखेंगे उससे हमारा मतलब साफ हो जायगा।

किसी मृत प्राणीकी एक पतली झिल्ली लाइये। यदि किसी भी तरह फेफड़ेकी झिल्ली उतारी हुई मिल सके तो और उत्तम होगा। झिल्लीमें यह गुण होना चाहिये कि बाहरसे पदार्थ रसकर भीतर जा सके। इस झिल्लीके दो थैले बनाइये। थैले बनानेमें इस बातका ख्याल रखिये कि दोनों थैलोंके बीचमें केवल झिल्लीकी एक तहकी दीवालका अन्तर रहे। एक थैलेमें आक्सिजन और दूसरेमें कार्बोनिक ऐसिड गैस भर दीजिये और थैलोंका मुंह बन्द कर दीजिये। कुछ समयके बाद दोनों थैलोंमेंसे थोड़ा थोड़ा गैस निकालकर इनकी रासायनिक परीक्षा कीजिये। आप देखेंगे कि दोनों थैलोंमें दोनों प्रकारके गैसोंकी बराबर बराबर मात्रा हो गई है।

इस उदाहरणसे हम आपको यह दिखलाना चाहते हैं कि यदि पूरी सुगमता मिले तो गैस इधर उधर फैलनेके लिये सदा आतुर रहती है। दूसरा गुण इनमें यह है कि जिस गैसकी जहां कमी होगी वह गैस वहीं जायगी। इन थैलोंकी गैसोंकी जांच करके आप देखेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि जिस समय दोनोंका परिमाण दोनों थैलोंमें बराबर हो जाय उस समयसे अनन्त काल तक उन्हें यों ही छोड़ दीजिये कोई परिवर्तन नहीं पाइयेगा अर्थात् उनकी मात्रा सदा बराबर रहेगी। इसीलिये हमने ऊपर कहा था कि अशुद्ध रक्तमेंसे कार्बोनिक एसिड गैस निकालनेके लिये आक्सिजनसे भरी हवा फेफड़ोंमें पहुंचानेकी आवश्यकता है। बाहरसे गई हवाका आक्सिजन रक्तमें चला जायगा क्योंकि फेफड़ोंके अशुद्ध रक्तमें आक्सिजनकी मात्रा बहुत ही कम है और फेफड़ोंके अशुद्ध रक्तका कार्बोनिक एसिड गैस इस हवामें जायगा क्योंकि इसमें कार्बोनिक एसिड गैसकी मात्रा कम है। इस तरह कार्बोनिक एसिडसे लदकर यह हवा निःश्वास द्वारा बाहर निकल आवेगी और अशुद्ध रक्त कार्बोनिक एसिड गैस बाहर निकालकर तथा आक्सिजन पाकर शुद्ध हो जायगा और शुद्ध रक्त बनकर फुसफुसिया शिरा द्वारा बायें ग्राहक कोष्ठमें पहुंचेगा और शरीरका दौरा करनेके लिये तैयार हो जायगा। अब देखना यह है कि रक्तकी शुद्धिकी यह क्रिया किस प्रकार होती है।

रक्तकी शुद्धि

हम ऊपर लिख आये हैं कि हमारे शरीरकी बनावट सेलों द्वारा हुई है और शरीरकी वास्तविक क्रिया इन्हीं सेलोंमें होती रहती है। हम जो कुछ काम या परिश्रम करते हैं उसका प्रभाव इन्हीं सेलोंपर पड़ता है। हम जो कुछ खाते हैं वह रक्तमें मिलकर इन्हीं सेलोंके पास पहुंचता है और रक्तकी नालियों (केशिकाओं) मेंसे ये सेलें उन पौष्टिक पदार्थोंको चूसती हैं। सेलें सदा काम किया करती हैं। शरीरमें प्रतिक्षण पुरानी सेलोंका विनाश अर्थात् टूटना फूटना और नयी सेलोंका निर्माण हुआ करता है। सेलोंपर प्रतिक्षण इस विनाश और निर्माणकी अवस्थामें अनेक तरहकी रसायनिक क्रिया भी हुआ करती हैं। इससे अनेक तरहकी गैसें बना करती हैं। इन गैसोंमें कार्बोनिक एसिड गैस सबसे प्रधान गैस है। इसका प्रभाव जहरीला होता है। जिस समय सेलें केशिकाओंमेंसे पौष्टिक पदार्थ चूसती हैं उसी समय सेलें इन जहरीले गैसोंको रक्तमें ढकेल देती हैं। रक्तके बयानमें हमने लिखा है कि जिस समय रक्त केशिकाओंसे निकलकर शिरामें होकर लौटता है उसका रङ्ग नीला हो जाता है। रक्तमें यह नीलापन इसी गैसके कारण हो जाता है। इस तरह सेलोंसे यह जहरीला गैस लेकर रक्त शिराओं द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठमें इकट्ठा होता है। दाहिने ग्राहक कोष्ठसे वह दाहिने क्षेपक कोष्ठमें आता है और वहांसे फुसफुसिया धमनी द्वारा यह शुद्ध होनेके लिये फेफड़ोंमें पहुंचता

है और केशिकाओंका जाल बनकर फेफड़ोंभरमें फैल जाता है [देखो चित्र नं० १५ (ग)]।

इस प्रकार एक तरफसे अशुद्ध अर्थात् कार्बोनिक एसिड-से लदा हुआ रक्त फेफड़ोंमें आकर जालकी भांति फैल जाता है और दूसरी तरफसे आक्सिजनसे लदी हवा आकर फेफ-ड़ोंमें जालकी तरह फैल जाती है। अर्थात् एक तरफ तो केशि-काओंका जाल रहता है और दूसरी ओर वायुकोष्ठोंका जाल फैला रहता है। सुभीतेसे समझनेके लिये दोनोंकी दो कोठरी मान लीजिये अर्थात् केशिकाओंकी कोठरीमें कार्बोनिक एसिड गैस भरी है और वायुकोष्ठोंकी कोठरीमें आक्सिजन भरा है। पहली कोठरीमें रक्त है और दूसरीमें हवा है। दोनों कोठरियों-को एक पतली झिल्लीके परदेने अलग कर रखा है अर्थात् केशिकाओंकी दीवार तथा वायुकोष्ठोंकी दीवारका परदा ही इनके बीचमें है। यह परदा इतना पतला है कि गैसें इनमेंसे भली भांति आ जा सकती हैं।

अपने स्वाभाविक गुणोंके अनुसार वायुमेंसे आक्सिजन निकल निकलकर रक्तमें जाने लगती है और रक्तमेंसे कार्बोनिक एसिड गैस निकल निकलकर हवामें आने लगती है। इस प्रकार फेफड़े एक तरहसे पंचका काम करते हैं और हवा तथा रक्तमेंसे पदार्थोंकी अदला बदली कर देते हैं।

इन गैसोंमें जो गुण है उसकी बदौलत तो अदला बदली हुआ ही करती है। इसके अतिरिक्त फेफड़ेकी सेलोंमें भी यह गुण

है कि वे गैसोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेमें सहायता पहुंचाती हैं।

इस प्रकार गैसोंका परिवर्तन होता है और हवामें कार्बोनिक एसिड गैस भर जाती है तथा आक्सिजन गायब हो जाती है और उधर रक्तमें आक्सिजन भर जाती है और उसमेंसे कार्बोनिक एसिड गैस गायब हो जाती है। एक बार रक्तका रंग फिर पहलेकी भांति लाल हो जाता है। उसका नीलापन गायब हो जाता है।

इस प्रकार रक्त शुद्ध होकर फुसफुसिया शिराओं द्वारा बायें ग्राहक कोष्ठमें जाता है और हवा कार्बोनिक एसिड गैस लेकर बाहर चली आती है। इसी प्रकार रक्त बराबर हवासे आक्सिजन ग्रहण किया करता है और कार्बोनिक एसिड गैस दिया करता है।

इसके अतिरिक्त सांसके साथ जो हवा हम बाहर निकालते हैं उसमें जलके कण भी पाये जाते हैं। इसकी जांच परीक्षा द्वारा कर सकते हैं। जाड़ेके दिनोंमें इसकी परीक्षा अतिसहजमें हो जाती है। सामने कोई पीतल या शीशेका वर्तन रखकर सांस लीजिये तो आप देखेंगे कि छोटे छोटे जलके कण उस वर्तनपर जम जाते हैं।

सातवां प्रकरण

अन्नकी क्रिया

रक्तके बयानमें हमने लिखा है कि जो रक्त शरीरके अंग और प्रत्यङ्गमें दौरा करता है उसमें आक्सिजन और पौष्टिक पदार्थ मिला रहता है। पिछले प्रकरणमें हमने यह दिखलानेका यत्न किया है कि रक्तको आक्सिजन कहांसे और किस प्रकार मिलता है। इस परिच्छेदमें हम यह दिखलानेका यत्न करेंगे कि रक्तको पौष्टिक पदार्थ किस प्रकार मिलता है और शरीरमें दौरा करते समय रक्तसे यह पदार्थ कहां गायब हो जाता है।

पिछले प्रकरणमें हमने इस बातका इशारा किया था कि हमारे शरीरकी सेलें प्रतिक्षण टूटा फूटा करती हैं। हम जो कुछ काम करते हैं सबका मूल कारण सेलें हैं। रसायनिक क्रिया द्वारा सेलोंमें उत्तेजना पैदा होती है और उसी उत्तेजनाकी बदौलत हमारे हाथ पैर डोलते हैं। इस तरह काम करनेके लिये जो स्फूर्ति पैदा होती है उसमें सेलोंपर जोर पड़ता है, सेलें टूटती हैं। यदि नई सेलोंका निर्माण न होता रहे अथवा पुरानी सेलोंकी मरम्मत न होती रहे तो थोड़े ही समयके बाद सेलें टूट फूटकर बेकाम हो जायं, शरीरकी क्रिया बन्द हो जाय और हम बेकाम

हो जायं। इसलिये इन सेलोंको ठीक अवस्थामें रखनेके लिये, पुरानी सेलोंकी मरम्मतके लिये तथा नई सेलोंके निर्माणके लिये हमें कुछ ऐसे पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है जो उनका वर्धन और पोषण करें। रक्त इन्हीं पदार्थोंको सेलोंके पास पहुंचाता है।

वे पदार्थ क्या हैं? सेलोंको पोषण और वर्धनके लिये किन पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है?

प्रोटीड, चर्बी, कर्बोज (शक्कर) निमक और जल।

प्रोटीड शरीरके सेलोंके लिये सबसे आवश्यक पदार्थ है। प्रोटीड किसी न किसी मात्रामें प्रायः सभी खाद्य पदार्थोंमें पायी जाती है। रसायनिक क्रियासे परीक्षा करनेपर इसमें ये पदार्थ पाये जाते हैं:—कार्बन, आक्सिजन, नाइट्रोजन, गन्धक तथा हाइड्रोजन।

चर्बी चिकना पदार्थ है। यह जलसे हलकी होती है और जलमें तैरने लगती है। यह गर्मीसे पिघल जाती है और सर्दीसे जम जाती है। यों तो चर्बीका कुछ न कुछ अंश शरीरकी प्रत्येक सेलोंमें पाया जाता है पर कुछ अंगोंकी सेलें ऐसी होती हैं जिनमें चर्बीका अधिक अंश पाया जाता है। रसायनिक क्रिया द्वारा जांच करनेपर इसमें निम्न लिखित पदार्थ पाये जाते हैं:—कार्बन, आक्सिजन और नाइट्रोजन।

कर्बोज—इसमें वे ही तीनों पदार्थ पाये जाते हैं जो चर्बीमें रहते हैं पर इसमें शक्करकी विशेषता रहती है।

निमक और जल ये दो साधारण पदार्थ हैं जिनकी आवश्यकता सदा रहती है।

यहांतक तो हमने यह दिखलाया कि सेलोंके लिये किन पौष्टिक पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है। अब इसके बाद हम यह दिखलानेकी चेष्टा करेंगे कि ये पौष्टिक पदार्थ शरीरको सेलोंको कहांसे मिलते हैं। इसके बारेमें कुछ लिखनेके पहले हम एक प्रश्नका उत्तर दे देना चाहते हैं।

हम भोजन क्यों करते ह ?—यदि एक बच्चेसे भी यह सवाल किया जाय तो वह चट यही उत्तर देगा कि हमें भूख लगती है और हम भोजन करते है। यदि किसी जवान आदमीसे यह सवाल किया जाय तो वह जवाब देगा कि हम जीनेके लिये भोजन करते हैं। इससे अधिक वह कुछ नहीं जानता और न कुछ कह सकता है। साधारणतः सभी आदमी यही बात समझते हैं कि अन्न हमारे जीवनका सार है। उसके बिना हम एक घड़ी भी नहीं जी सकते। बात भी ठीक ही है। बालकका उत्तर भी ठीक है और जवानका उत्तर भी ठीक है। जब हमें भूख लगती हैं तभी हम खाते हैं और हम इसलिये खाते हैं कि हम जीवित रहें। पर यह जीवित रहना और भूखका लगना ही एक रहस्य है जिसे वे लोग नहीं समझते। उसी रहस्यका उद्घाटन यहां किया जायगा।

पहला उत्तर है, "हमें भूख लगती है इसलिये हम खाते हैं।" हमें भूख कब लगती है? सेलें काम करती करती शिथिल हो

आती हैं,उनके खजानेमें पौष्टिक पदार्थ उनके पोषणके लिये काफी नहीं रह जाता तो उन्हें पोषण-पदार्थकी खोज होती है। जिस समय हम इस अवस्थाको प्राप्त होते हैं वही हमारी *भूख लगनेकी अवस्था* है। दूसरा उत्तर है "हम जीवित रहनेके लिये भोजन करते हैं।" यह भी ठीक ही है। हम पहले ही कह आये हैं कि सेलोंको पोषण-पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है। यदि ये पोषण-पदार्थ शरीरकी सेलोंको न मिलें तो ये मर जायं और शरीरकी सारी क्रिया बन्द हो जाय। सेलोंको जीवित रखनेके लिये हम भोजन करते हैं।

इससे दोनों प्रश्न हल हो गये। भोजनकी आवश्यकता क्यों है, यह भी हल हो गया और सेलोंको पोषण-पदार्थ कहांसे मिलता है यह भी मालूम हो गया। अब हमें यह देखना है कि सेलोंतक पोषण-पदार्थ किस तरह पहुंचता है।

इस प्रश्नके हल होते ही एक दूसरा प्रश्न यह उठता है कि हमें क्या भोजन करना चाहिये? क्या सभी पदार्थ हम खा सकते हैं? हम ऊपर कह आये हैं कि हमें सेलोंके पोषणके लिये किन किन पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है। इससे सिद्ध है कि हमें उन्हीं पदार्थोंको खाना चाहिये जिनमें उपरोक्त सभी पदार्थ पाये जाते हैं। इससे उचित प्रतीत होता है कि भोजनके कुछ नमूने देदिये जायं। हमारी समझमें नीचे दिये गये कुछ नमूने लाभदायक होंगे।

जिन लोगोंको मानसिक श्रम अधिक नहीं करना पड़ता हो

बल्कि केवल शारीरिक श्रमसे जीवन व्यतीत करना पड़ता हो उनके लिये निम्न लिखित परिमाणमें भोजन करना चाहिये। उनके शरीरकी सेलोंके लिये सभी आवश्यक पदार्थ इस भोजनमें मिल जायंगे:—

चावल	१० छटांक	यह भोजन २४ घण्टेके लिये है।
दाल	२ ,,	
तेल	१ ,,	
शाक थोड़ासा		

यदि दाल कम मिले तो उसके स्थानपर आलूकी तरकारी-से काम लिया जा सकता है।

जिन लोगोंको मानसिक श्रम अधिक करना पड़ता हो उनके लिये निम्न लिखित परिमाणमें भोजन यथेष्ट होगा:—

गेहूंका आटा	४ छटांक
दाल	१ ,,
दूध	१२ ,,
घी	१ ,, या डेढ छटांक
शक्कर	१ ,,
शाक थोड़ासा	

जो मांसाहारी नहीं हैं उन्हें थोड़ा आलूके शाकका प्रयोग करना चाहिये।

इससे यह स्पष्ट है कि जिस अन्नमें प्रोटीड, चर्बी या शक्कर नहीं है वह हमारे भोजनके लिये अनावश्यक और निरर्थक है।

उसे खाकर हम केवल अपनी पाचनशक्तिपर व्यर्थका बोझ डालते हैं, जैसे मशाले आदिका खाना। इनसे शरीरको कोई लाभ नहीं है, केवल जीभके स्वादके लिये हम उन्हें खाते हैं।

भोजन पकाना चाहिये कि नहीं?—हमें भोजन सदा पकाकर खाना चाहिये। पकाकर भोजन खानेसे हमें कई प्रकारके लाभ होते हैं:—

१—भोजन आसानीसे पच जाता है। उसका स्वाद भी कच्चेकी अपेक्षा अच्छा हो जाता है।

२—कच्चे पदार्थमें कुछ ऐसे कीटाणु होते हैं जिनके प्रभावसे बीमारी उत्पन्न हो जाती है। भोजन पकानेसे वे जलकर मर जाते हैं।

३—कितने ऐसे पदार्थ हैं जो कच्चे रहनेके कारण एक दम ठोस रहते हैं। उस अवस्थामें पचानेवाले रसोंका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर यदि उन्हें पका दिया जाय तो गर्मीके कारण उनके पेट फट जाते हैं और वे आसानीसे पच सकते हैं।

जो अन्न हम खाते हैं उसे हम पहले मुंहमें रखकर दांतों द्वारा चबाते हैं और मुंहसे जो लार निकलती है उससे मिलाते हैं। मुंहकी लारसे एक रस निकलता है जो कर्बोज अर्थात् शक्करपर असर करता है अर्थात् भोजनमें शक्कर बननेवाले पदार्थको पचाता है। यहांसे भोजन अन्नप्रणाली द्वारा सीधा पेटमें पहुंचता है। पेटमें अन्नके प्रोटीड जनित पदार्थपर रसका प्रभाव पड़ता है अर्थात् पेटमें जो रस निकलता है उससे अन्नमें प्रोटीडका जो

भाग रहता है वह पचता है। वहांसे अन्न अंतड़ियोंमें जाता है। यहांपर चर्बीको पचानेके लिये रस मिलता है और चर्बी पचती है। इसके बाद अन्न रस तो रक्तमें मिल जाता है, जल और शक्कर मूत्राशयमें चले जाते हैं, पित्त पित्ताशयमें छनकर चला जाता है और अपक्व तथा अनावश्यक पदार्थ मलके रूपमें होकर बाहर निकल जाते हैं। यही अन्नकी क्रियाका संक्षेप विवरण है। अब हम आगे चलकर प्रत्येक पाचन स्थलोका विस्तृत विवरण देंगे और दिखलावेंगे कि इनका निर्माण किस प्रकारकी सेल्सोंसे हुआ है, उनमेंसे किस तरहके रस निकलते हैं और अन्नमेंसे रस या पौष्टिक पदार्थ रक्तमें किस तरह जाता है।

अन्न-मार्ग जिन मार्गोंसे होकर अन्न भीतर शरीरमें प्रवेश करता है उसमें सबसे पहले मुंह है। अन्नका कौर मुंहमें डालते ही दांत और जीभ अपना काम करने लगते हैं। प्रायः दो वर्षकी अवस्थामें ही दांत आजाते हैं। पहले पहल सामनेके दांत आते हैं। वे थोड़े बहुत चौड़े होते हैं। इनसे चबानेका काम लिया जाता है। इसलिये इन्हें छेदेक दांत कहते हैं। पहले दूधके दांत आते हैं। ७ या ८ वर्षकी अवस्था तक प्रायः सभी दूधके दांत निकल आते हैं। इनकी संख्या २४ होती है। १२ नीचे और १२ ऊपर। ९ या १० वर्षकी अवस्था तक दूधके दांत धीरे धीरे गिर जाते हैं और नये मजबूत दांत निकल आते हैं। पर २५ वर्षकी अवस्था तक दांतोंकी संख्या २४ ही रहती है। अन्तके चारों चौभर—जिन्हें बुद्धि-दन्त कहते

हैं—इस अवस्थाके बादही निकलते हैं। इस प्रकार २५ से ३० वर्षकी अवस्थाके भीतर हमारे मुंहमें १६ ऊपर और १६ नीचे दांत होजाते हैं। प्रत्येक दांतकी बनावट भिन्न भिन्न होती है और उनकी बनावट तथा कामके अनुसार उनका नाम भी भिन्न भिन्न रखा गया है। पर इस छोटीसी पुस्तकमें उनका विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकता।

बाहरसे देखनेमें हमें यही मालूम होता है कि हमारा दांत ठोस हड्डियोंका बना है पर जांच करनेसे मालूम होता है कि वह भीतरसे ठोस न होकर पोपला है और कई चीजोंसे बना है।

दांतकी चमक—जिसे दांतकी पालिस भी कह सकते हैं—दांतकी रक्षाके लिये बहुत ही जरूरी है। इसलिये दातून करते समय इस बातपर सदा ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी कोई सख्त वस्तु बतौर मंजनके इस्तेमाल न की जाय जिससे दांतपर जोरोंकी रगड़ पड़े और उनकी चमक जाती रहे। अतिशय गरम और अतिशय ठण्ढे पदार्थ भी दांतोंको हानि पहुंचाते हैं। इनसे कभी कभी दांत उखड़ जाते हैं और हिलने लगते हैं।

भोजनके उपरान्त दांतोंको बड़ी सावधानीसे साफ करना चाहिये। अन्नके दाने दांतोंके बीचमें फंस जाते हैं। यदि वे साफ न किये जायं तो वहीं पड़े पड़े सड़ने लगते हैं। इससे मुंहमें दुर्गन्ध भी आती है और दांत खराब हो जाते हैं। कभी कभी उनके ही कारण मनुष्यका स्वास्थ्य खराब होते देखा गया है।

दांत मसूड़ेमें जमे हैं बल्कि यों कहना चाहिये कि मसूड़ेही दांतको पकड़े रहते हैं। यदि ये मसूड़े न होते तो हमारे दांत क्षणभरके लिये भी न ठहर सकते।

इनके अलावा मुंहमें ६ गांठें हैं, तीन दाहिनी तरफ और तीन बायीं तरफ। इन्हीं गांठोंमेंसे लार नामका रस निकलता है जो मुंहमें गये अन्नको तर करता है और अन्नमें शक्करका जितना अंश रहता है उसे पचाता है।

६ माससे कम आयुवाले बालककी लारमें शक्करपर क्रिया करनेवाला रस नहीं होता। यही कारण है कि ६ माससे कम आयुवाले बालकको अन्न नहीं दिया जाता और ६ मासके बाद अन्नप्राशनकी विधि है।

एक बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये। लारमें जो रस होता है उसका प्रभाव अन्नमें मिश्रित शक्कर उत्पन्न करनेवाले पदार्थपर तभी हो सकता है जब कि भोजनमें तीखी खटाई आदि न मिली हो। इससे भोजनके साथ सिरका आदि तेज पदार्थ नहीं खानी चाहिये।

अन्नप्रणाली मुंहके बाद है। कण्ठके द्वारा इसका संबन्ध मुंहसे है। अन्नप्रणालीकी लम्बाई प्रायः १० इञ्च होती है। अन्नप्रणालीका कुछ अंश ग्रीवामें रहता है। ग्रीवामें अन्न-प्रणालीके सामने स्वरयन्त्र और पीछे रीढके कसेरुका रहते हैं। ग्रीवासे होकर अन्नप्रणाली धड़के ऊपरी भाग अर्थात् छातीमें पहुंचती है। वहांसे होती हुई अन्नप्रणाली छाती और उदरके बीचकी पेशीके द्वारको चीरती पेटसे जा मिलती है।

अन्न जबतक इस नलीमें रहता है उसपर कोई क्रिया नहीं होती। अन्नप्रणालीमें ऐसा कोई रस नहीं बनता जिसका प्रभाव अन्नपर पड़ता हो। इस नलीका काम केवल मुंहद्वारा चबाये अन्नको उदरमें पहुंचा देना है। यह एक तरहका दूत है जो स्वामीके हाथसे जिस तरहका पत्र पाता है यथास्थान पहुंचा देता है। अन्नप्रणालीकी दीवार मांस और रेशेदार तन्तुओंसे बनी है। इसकी भीतरी पीठपर श्लैष्मिक कला बिछी रहती है।

पेट अन्नप्रणालीके बाद आता है। साधारणतः हम इसे उदर कहते हैं। पर वास्तवमें उदर व्यापक शब्द है और इसमें धड़के नीचेके सभी अङ्ग—जो कि अण्डकोशसे ऊपर हैं—आजाते हैं। शरीर-विज्ञानकी पारिभाषिक भाषामें इसे *पाकस्थली* कहते हैं। पर सुभीतेके लिये हम इसे पेट कहेंगे। पेटकी शकल यदि आप जानना चाहते हैं तो किसी भिश्तीको बुलाइये और उससे कहिये कि वह अपनी मशकमें जल भरकर रख दे। उदर ठीक इसी तरहका होता है। बायां भाग दाहिने भागकी अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है और इसी बायें भागमें अन्नप्रणाली खुलती है। उदरके दो पीठ होती हैं, एक सामने जो कुछ ऊपरकी ओर रहती है और एक पीछे जो कुछ नीचेकी ओर रहती है। इसका सामनेका किनारा गहरा होता है और पीछेका किनारा उभरा होता है। इसमें दोनों तरफ दो छेद होते हैं। एक छेद ऊपर चौड़े भागमें होता है जहां अन्नप्रणाली आकर खुलती है और

दूसरा नीचे पतले भागमें होता है जहांसे होकर अन्न अंतड़ियोंमें जाता है।

पेटकी दीवार अनैच्छिक मांससे बनी है। मांस-सेलोंकी कई तहोंकी इसकी दीवार होती है। भीतरी पृष्ठपर श्लैष्मिक कला बिछी रहती है। इसमें अनेक छोटी छोटी नलीके आकारकी ग्रन्थियां होती हैं। इसकी बाहरी दीवारपर एक पतली झिल्ली चढ़ी रहती है।

पेटका द्वार जहां अंतड़ियोंमें खुलता है वहां मांसपेशियोंके मोटे मोटे रस्से बिछे रहते हैं। इनके सिकोड़के कारण इस छेदका दरवाजा सदा बन्द रहता है। पेटमें पर्याप्त कालतक रहकर जिस समय अन्न अंतड़ियोंमें जानेवाला होता है तो उदरकी दीवालें सिकुड़ने लगती हैं और भोजन आगेको खिसकता है। इस प्रकार जोर पड़नेसे मांसके ये रस्से फैलते हैं और अन्नके जानेके लिये रास्ता खुल जाता है।

यदि आप पेटका भीतरी भाग चीरकर देखें तो आपको यह सफेद या हलका गुलाबी दिखाई देगा। पर सदा यही बात नहीं रहती। जिस समय पेट खाली रहेगा उस समय इसका रङ्ग इस तरहका होगा। पर जिस समय यह अन्नसे भरा रहता है इसका रङ्ग लाल होजाता है। इसका कारण यह है कि जिस समय अन्न पेटमें उतरता है पेट अपनी क्रिया आरम्भ कर देता है। उसकी सेलोंको काम करना पड़ता है। इस-लिये उन्हें पौष्टिक पदार्थकी आवश्यकता पड़ती है। पौष्टिक

पदार्थ लेकर रक्तकी नलियां इस तरफ तेजीसे बहने लगती हैं। रक्तकी नलियां भर जाती है और साराका सारा भीतरी भाग लाल हो जाता है। पर जिस समय पेटमें पाचन क्रिया नहीं होती पेट आराम करता रहता है, उस समय उसकी सेलोंको अधिक पौष्टिक पदार्थकी आवश्यकता नहीं पड़ती। उस समय रक्तका प्रवाह पेटकी नलियोंमें मन्द पड़ जाता है और साथही पेटकी ललाई भी कम हो जाती है।

हम ऊपर कह आये हैं कि पेटकी भीतरी दीवारमें गांठदार नलियां दिखलाई देंगी। इन्हीं गांठोंमें रस बनता है। इस रसका नाम *आमाशयिक रस* है।

पेटकी मांसपेशियां अनैच्छिक हैं। इनका सिकोड़ और फैलाव कई तरहका होता है। उसके हिसाबसे पेटके पांच भिन्न भिन्न भाग हो सकते हैः-

१—सबसे ऊपरका भाग जहां अन्नप्रणाली पेटमें आकर खुलती है। इसे *हृदयद्वार* कहते हैं। यहां मांसका अंश अधिक होता है। इनकी बनावट इस प्रकारकी है कि जिस समय उदरमें अन्न भरा रहेगा ये सिकुड़े रहेंगे और ऊपरके आने जानेका रास्ता बन्द रहेगा। पर जिस समय पेट खाली रहेगा ये द्वार भी खुले रहेंगे।

२—बायीं ओरका चौड़ा भाग, इसे *ऊर्ध्वांश* कहते हैं।

३—बीचका भाग, इसे *मध्यांश* कहते हैं।

४—दाहिनी ओरका तङ्ग भाग, इसे *दाक्षिणांश* कहते हैं।

५ —अन्तिम द्वार जिधरसे अन्न पेटसे अंतड़ियोंमें जाता है। इसका वर्णन हमने ऊपर किया है।

अंतड़ियोंका स्थान पेटके बाद है। ये दो तरहकी होती हैं— छोटी और बड़ी अंतड़ियां। इनकी कुल लम्बाई प्रायः २२ फुट होती है। इसमें छोटी अन्तड़ियां प्रायः १६ फुट लम्बी होती हैं। छोटी अंतड़ियां पेटके नीचे गेडुरी मारकर पड़ी रहती हैं और बड़ी अन्तड़ियां इनके चारों ओर चक्कर मारकर नीचेकी ओर मल द्वारमें मिल जाती हैं।

छोटी अंतड़ियोंकी दीवालें उन्हीं पदार्थोंसे बनी हैं जिनसे पेट बना है। सेलोंकी जमावटमें कुछ फर्क है पर वह इतना सूक्ष्म है कि इस स्थानपर विशेष विवरण नहीं दिया जा सकता।

इसकी श्लैष्मिक कलामें एक विशेषता होती है जिसके बारेमें कुछ लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है। चौड़ाईके रुख इसमें झोलें होती हैं। नालीके आकारकी इसमें जो गांठें होती हैं उनके बीचमें बालदार उभार होते हैं। इनका काम चीजोंको ग्रहण करना है। इन्हें *ग्राहकांकुर* कहते हैं [देखो चित्र नं० १८]।

यहांतक तो हमने केवल उन अङ्गोंका वर्णन किया जिनका सीधा सम्बन्ध अन्नसे है अर्थात् जिनसे होकर अन्न बाहरसे भीतर जाता है तथा फिर बाहर निकलता है और साथही जिसमें अन्नके विविध पदार्थोंके पचानेवाले रस भी बनते हैं। इसके आगे हम अब उन अवयवोंका वर्णन करेंगे जिनसे अन्नसे सीधा सम्बन्ध

नहीं है फिर भी अन्नकी पाचन क्रियामें वे बड़ी सहायता करते हैं। इनमें पहला स्थान यकृतका है।

यकृत उदरके ऊपरी भागमें उस मांसपेशीके ठीक नीचे रहता है जो धड़के ऊपरके भागको नीचेके भागसे अलग करती है। यह पेटके बीचों बीच इस प्रकार रहता है कि मध्यरेखाकी दाहिनी ओर इसका अधिक भाग रहता है। इसका दाहिना भाग मोटा और चौड़ा होता है पर बायां भाग पतला और चिपटा होता है। स्वस्थ अवस्थामें आप ऊपरसे यकृतका पता नहीं लगा सकते क्योंकि यह अंतड़ियोंके भीतर रहता है। पर जब बीमारीके कारण यह पसलियोंके नीचे उतर आता है तब स्तनोंके नीचे पसलियोंके बाद हाथसे दबानेसे मालूम होता है। इसके नीचेके भागमें पित्ताशय होता है। यकृतके कई भाग पेटसे मिले रहते हैं।

यकृतमें पित्त नामका पाचन रस बनता है। इसका रङ्ग हलका हरा और पीला होता है। स्वादमें यह कड़ुआ होता है। यकृतसे पित्त बनकर पित्ताशयमें इकट्ठा होता है। जिस समय भोजन पेटसे निकलकर अंतड़ियोंमें जानेकी तैयारी करने लगता है तो यह पित्त-प्रणाली द्वारा यहींपर अन्नसे जा मिलता है।

यहांतक तो हमने अन्नको पचानेकी क्रिया करनेवाले अङ्गोंका संक्षिप्त विवरण दिया। इसके आगे हम इस बातपर प्रकाश डालेंगे कि किन किन अङ्गोंमें कौन कौन रस बनता है

और अन्नपर उनका प्रभाव किस प्रकार पड़ता है अर्थात् अन्नकी पाचन क्रिया किस प्रकार होती है।

पाचनक्रिया

कुछ और लिखनेके पहले हम दो शब्दोंमें यह समझा देना चाहते हैं कि पाचन क्रियाके क्या माने हैं। प्रचलित अर्थमें पाचन शब्दका हम लोगोंने बहुत ही गलत अर्थ समझ लिया है। 'पाचन' से हम लोग यह समझ बैठे हैं कि जो अन्न हम लोगोंने खाया है वह घुलकर हमारे शरीरसे मिल गया और हमारे बल और शक्ति बढ़ानेके काममें लग गया। पर यह भ्रम-पूर्ण विचार है। पाचन-का वास्तविक अर्थ यह है कि अन्नमें वर्तमान विविध पदार्थों-पर पचानेवाले विविध अङ्गोंमें रसकी क्रिया हुई और अन्नमें वर्तमान वे पदार्थ इस दशाको प्राप्त होगये कि वे रक्तमें मिलकर शरीरकी सेलोंको पौष्टिक पदार्थ दे सकते हैं। पाचन अङ्गोंके विविध स्थानोंमें भिन्न भिन्न पदार्थोंपर भिन्न भिन्न रसोंकी जो क्रिया होती है उसे ही पाचन क्रिया कहते हैं। पाचन क्रिया-का आरम्भ मुखसे ही होता है।

अन्नका ग्रास मुंहमें गया और जीभ तथा दांतोंने अपना काम आरम्भ किया। दांत अन्नको तोड़ फोड़कर उसके टुकड़े करने लगे और उसे पीस पीसकर महीन करने लगे। दूसरी ओर जीभ उस पिसे हुए अन्नको उलट पलटकर मुंहसे निकली हुई लारसे तर करने लगी।

मुंहके बयानमें हमने लिखा है कि मुंहके परदेमें स्थान स्थान-

पर गांठदार नलियां होती हैं। इन नलियोंसे एक प्रकारका रस निकलता है जिसे *लार* कहते हैं। यह रस अन्नमें शक्करकी जातिके पदार्थको पकाता है। सबसे पहले मुंहमें अन्नकी पाचन क्रियाका आरम्भ इसी रसके प्रयोगसे होता है। अन्नको मुंहमें डालिये और लारमें मिलाकर उसे थोड़ी देर तक चबाते रहिये। आप देखियेगा कि अन्न पहलेसे मीठा मालूम होता है। मुंहमें गुड़ तो रहता नहीं, फिर यह मिठास कहांसे आई? यह मिठास इसी लार नामी रसकी बदौलत है। लारके प्रभावसे अन्नका शक्करी पदार्थ पचकर शक्कर बनने लगता है और अन्नमें मिठास आने लगती है। मुंहमें लार-रसका प्रभाव उसी अन्नपर पड़ता है जिसमें यह शक्करी पदार्थ मौजूद रहता है। खट्टे या खार मिले अन्नको आप दिनरात चबाते रहिये कोई असर नहीं होगा।

अन्न कितनी देरतक चबाना चाहिये? इसके साथ ही यह प्रश्न उठता है कि मुंहमें अन्नको कितनी देरतक चबाना चाहिये। उसे देर तक दांतोंके नीचे पीसना चाहिये अथवा दो चार बार चबाकर निगल जाना चाहिये?

आपको मालूम होगा कि मुंह दो काम करता है। पहले तो लार-रसके प्रभावसे वह शक्करको पचाता है और दूसरे वह अन्न-को पीसकर महीन बना डालता है। लार-रसके पूर्ण प्रभावके लिये अन्नका मुंहमें कुछ देर तक रहना जरूरी है। लार-रस अपना पूरा काम कर ले, इसके लिये अन्नको तबतक मुंहमें रखना और चबाते रहना चाहिये जबतक अन्नमें पूरी तरहसे

मिठास न आजाय। पूरी तरहसे मिठास आजानेपर ही अन्नको निगलना चाहिये।

मुंहका दूसरा काम अन्नको पीसना है। आप जानते ही हैं कि अन्न जिस समय अन्नप्रणालीद्वारा उदर आदि अङ्गोंमें जाता है उसपर भिन्न भिन्न रसोंकी क्रिया होती है और उसमें मिश्रित भिन्न भिन्न पदार्थ उस क्रिया द्वारा पचते हैं। इसके लिये अन्नके जितने अधिक टुकड़े हुए रहेंगे उतना ही अच्छा होगा। इसको भली प्रकारसे समझनेके लिये एक उदाहरण दे देना उचित होगा। एक दिन आप अपने रसोइयेके पास बैठ जाइये और उससे कहिये कि चावल पकानेके दो वर्तन आगपर चढ़ाओ। आपकी यह अलौकिक लीला देखकर शायद वह घबरावे पर आप इसकी परवा न कीजिये। दोनों वर्तनोंका जल गर्म होने दीजिये। इधर आप उससे दो वर्तनोंमें चावल साफ कराकर एकका चावल तो धोकर ज्योंका त्यों रहने दीजिये और दूसरेके चावलको यदि वह अच्छी तरह फूल गया है तो हाथसे मलवा दीजिये। नहीं तो सिलपर पिसवा दीजिये। किसी भी अवस्थामें एक वर्तनका चावल तो खड़ा रहे और दूसरेका पिसा रहे। अब दोनों तरहके चावलोंको दोनों वर्तनोंमें डाल दीजिये। १५ मिनट बाद उतारकर देखिये। आप देखेंगे कि जिस चावलको आपने पीस डाला था वह तो अच्छी तरह पक गया पर दूसरा चावल जो खड़ा था अभी कच्चा ही रह गया है। आपको यह समझनेमें देर न लगेगी कि इसका कारण चावलकी अवस्था है।

ठीक यही बात आपके उस अन्नके साथ होती है जिसे आप खाते हैं। आप जानते हैं कि पाचन क्रिया भिन्न भिन्न अङ्गोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे होती है अर्थात् हमारे अन्नमें जो पदार्थ पाये जाते हैं वे सब एक ही जगह नहीं पचते। कोई पदार्थ मुंहमें पचता है तो कोई पेटमें और कोई अंतड़ियोंमें। ऐसी अवस्थामें यदि अन्नको पहलेहीसे पीसकर टुकड़े टुकड़े कर दिया जाय तो पाचनके काममें बड़ी सुविधा हो क्योंकि पीसनेसे अन्नमें रहनेवाले भिन्न भिन्न पदार्थ अलग अलग हो जायंगे और पाचन स्थानमें पहुंचते ही उनपर वहांके रसका प्रभाव पड़ने लगेगा। जैसे पेटमें प्रोटीड नामी पदार्थपर पेटमें बने आमाशयिक रसकी क्रिया होती है। यदि अन्नके टुकड़े हुए रहेंगे तो प्रोटीड अलग रहेगा और आमाशयिक रस अपना काम तुरत करने लगेगा, नहीं तो सबसे पहले उसे अन्नको तोड़ फोड़कर इस लायक बनाना होगा कि उसपर आमाशयिक रसकी क्रिया हो और वह प्रोटीडको पचाना आरम्भ करे। इसमें बहुत देर लगेगी और पचानेवाले अङ्गोंको इतनी अधिक देर तक काम करना पड़ेगा कि शायद उन्हें आराम लेनेकी नौबत न आवे और वे जल्दी ही थककर बेकाम हो जायं। इसलिये मुंहमें अन्नको जितना अधिक चबाया जायगा पचनेमें उतनी ही सुविधा होगी। तोभी अन्नके चबानेका क्या परिमाण है? हमारी समझमें अन्नको तबतक चबाते रहना चाहिये जबतक वह आपसे आप गलेके नीचे उतरनेका यत्न न करे। जब अन्न बिना प्रयास गलेके

नीचे उतरनेके लिये जोर करने लगे तो चबानेका काम बन्द करना चाहिये। साधारणतः प्रत्येक कौर (ग्रास) को ३२ बार चबाना चाहिये। जिस समय आप चबाना बन्द कर देंगे जीभ अपना काम आरम्भ करेगी। वह लार मिला मिलाकर अन्नको लपेटना-आरम्भ करेगी और इस तरह अन्नकी एक गोली तैयार करेगी और गलेकी तरफ अन्नको ठेलेगी। इस क्रियाको *निगलना या लीलना* कहते हैं। निगलनेपर अन्न कण्ठ द्वारा अन्नप्रणालीमें पहुंच जाता है।

हम पीछे कह आये हैं कि कण्ठसे स्वरयन्त्र और अन्नप्रणाली दोनोंका आरम्भ होता है। स्वरयन्त्र सामने है और अन्नप्रणाली उसके पीछे है। इससे जिस समय हम अन्नको निगलते हैं बहुत कुछ संभावना रहती है कि अन्न स्वरयन्त्रमें चला जाय। पर इसकी रक्षा दो प्रकारसे होती है। एक तो स्वरयन्त्रके ऊपर एक कार्टिलेजका ढकना लगा है जो अन्नप्रणालीमें अन्न जानेके समय स्वरयन्त्रको ढक लेता है, दूसरे मौन रहनेसे। भोजन करते समय बोलनेसे इस बातका सदा भय बना रहता है कि कहीं स्वरयन्त्रका द्वार खुल न जाय और अन्नका कुछ भाग स्वरयन्त्रमें चला न जाय।

बात यह है कि बोलनेके समय हम सांसको बाहर खींचते हैं। ऐसी अवस्थामें हवाको बाहर निकलनेको मार्ग देनेके लिये स्वरयन्त्रका ढकना जरूर खुलेगा। यही कारण है कि भोजन करते समय बोलना मना है।

इस तरह कण्ठसे होकर अन्न अन्नप्रणालीमें पहुंचता है। अन्नप्रणालीका काम केवल अन्नको मुंहमेंसे पेटमें पहुंचा देना है। इसमें अन्नपर कोई रसायनिक क्रिया नहीं होती। इस तरह अन्न अन्नप्रणाली द्वारा पेटके द्वारपर पहुंचता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि अन्नप्रणालीका अन्त पेटमें होता है। जहां अन्नप्रणालीका अन्त होता है वह हिस्सा मोटे मांसके रस्सोंसे बना है और द्वार बन्द रहता है। ऊपरके भोजनके दबावसे द्वार खुलता है और अन्न पेटमें पहुंचता है।

इस तरह लारसे मिला हुआ भोजन अन्नप्रणाली द्वारा आकर पेटके बायें चौड़े भागमें इकट्ठा होता है। पेटमें अन्नके पहुंचते ही उदरकी गठोली नलियोंद्वारा आमाशयिक रस बन बनकर निकलने लगता है। पेटमें भोजन पहुंचकर आमाशयिक रससे मिल जाता है और आमाशयिक रस अपना काम करने लगता है।

हम कह आये हैं कि पेटकी दीवार अनैच्छिक मांसपिण्डसे बनी है। इससे जहां पेटमें कोई वस्तु आई कि उसके मांस सिकुड़ने और फैलने लगते हैं। इसके सिकुड़नेसे भीतरके अन्न-पर दबाव पड़ता है और अन्न धीरे धीरे सरककर नीचे चला जाता है। पेटके दक्षिणांशकी दीवारका मांसपिण्ड मोटा होता है। इस कारण पेटके इस भागमें सिकोड़ अधिक और जोरदार होती है। इससे भोजनपर दबाव भी ज्यादा पड़ता है। यहां आकर भोजन आमाशयिक रससे मिलकर खूब मथ जाता है। पेटका दक्षिणांश तबतक सिकुड़ता और फैलता

रहेगा जबतक भोजन सब तरहसे पिसकर पतला न हो जाय और आमाशयिक रससे मिलकर घुल न जाय।

इससे यदि मुंहमें अन्न अधिक चबा लिया जाय तो पेटको कम परिश्रम करना पड़ता है।

पेटके दक्षिणांशमें जब सारा भोजन पिस जाता है और आमाशयिक रसका असर उसपर पूरी तरहसे पड़ जाता है तब अन्न नीचे खिसकने लगता है और नीचेके द्वारपर पहुंचता है जहांसे होकर अंतड़ियोंमें जानेका मार्ग है।

हम यह भी बता आये हैं कि जबतक भोजन पेटमें पचता रहता है पेटके दोनों (ऊपरवाला तथा नीचेवाला) मार्ग बंद रहते है। पर जब भोजन पेटमें यथाविधि पचकर नीचेकी ओर सरकने लगता है तो नीचेका द्वार खुलता है और धीरे धीरे सारा भोजन पक्काशयमें जाकर इकट्ठा होजाता है। यहींसे भोजन अंतड़ियोंमें पहुंचता है।

पेटमें साधारणतः अन्न ४ घण्टे तक रहता है। इतनी देरमें अन्नपर आमाशयिक रसकी सारी क्रिया होजाती है। पर यदि अन्न मुंहमें अच्छी तरहसे चबाया नहीं रहता तो पेटमें इसे मथकर पतला बनानेमें देर लगती है, क्योंकि पेटकी प्रवृत्ति है कि वह अंतड़ियोंमें कोई भी वस्तु खड़ी नहीं जाने देता।

हम ऊपर बता आये हैं कि पेटमें जो आमाशयिक रस उत्पन्न होता है उसका प्रभाव विशेषकर प्रोटीडपर ही पड़ता है। पर साथ ही साथ शक्कर बनानेवाले पदार्थपर भी आमाशयिक

रस अपनी क्रिया करता है। इस तरह मुंहमें लारके असरसे शक्करवाला पदार्थ नहीं पचा रहता वह पेटमें जाकर पचता है। इस तरह भोजनके प्रायः अधिकांशका पाचन पेटमें ही होता है।

दूधका पाचन पेटमें एक विचित्र तरहसे होता है। आमाशयिक रसके प्रभावसे दूध जमकर उदरमें दही हो जाता है और तब उसका पचना आरम्भ होता है। यह क्रिया एक विचित्र तरहसे होती है जिसका विस्तारसहित वर्णन इस छोटीसी पुस्तकमें नहीं हो सकता।

पेटमें चर्बी नहीं पचती। आमाशयिक रस इसपर कोई असर नहीं डाल सकता। इसके पचनेके लिये एक विशेष तरहके रसकी आवश्यकता पड़ती है जो छोटी अंतड़ियोंमें तैयार होता है।

यही कारण है कि रोटीमें घी चुपड़कर खाना शरीर-विज्ञानके अनुसार वर्जित है। आटेमें दो पदार्थोंकी अधिकता रहती है—कर्बोज (शक्कर) और प्रोटीड। मुंहमें शक्करकी पाचन क्रिया होती है और पेटमें प्रोटीडकी। पर मुंह तथा पेटमें जो रस पैदा होता है उसका प्रभाव चर्बी अर्थात् चिकने पदार्थपर नहीं होता। उसका परिणाम यह होता है कि घी चुपड़ी हुई रोटीका अधिकांश विना पचे हुए ही पेटसे अंतड़ियोंमें चला जाता है। अंतड़ियोंमें जो रस बनता है उसका प्रभाव केवल चर्बीपर पड़ता है। इससे घीका हिस्सा तो वहां पच जाता है पर रोटी ज्योंकी त्यों मल-द्वारसे बाहर निकल जाती है। इससे धीरे धीरे

मन्दाग्नि, अजीर्ण और कब्ज आदि रोगोंकी उत्पत्ति हो जाती है। कारण कि पेटको जब काम नहीं करना पड़ता या कम काम करना पड़ता है तो उसकी सेलें शिथिल हो जाती हैं, धीरे धीरे अपना काम भूल जाती हैं और अन्तमें बेकार होजाती हैं।

यही कारण है कि पचानेवाली दवाइयोंका प्रयोग भी वर्जित है। यदि भोजन करलेनेके बाद जल्दी पाचन क्रिया परिसमाप्त करनेके लिये पचानेवाली दवाइयोंका सेवन किया जाता है तो भी वही परिणाम होता है जो हम ऊपर कह आये हैं। इससे भी पेटमें रस बनानेवाली सेलोंका निरन्तर उचित प्रयोग नहीं होता। इससे वे बेकार हो जाती हैं और फिर उनसे काम नहीं होता। इससे इस तरहकी दवाइयोंका भी प्रयोग नहीं करना चाहिये।

इस समय तक भोजन अब घुलकर रसका रूप धारण कर लेता है और पतला हो जाता है। उसका पहलेकासा आकार नहीं रह जाता। यदि इस अवस्थामें उसे हमारे सामने निकाल-कर रख दिया जाय तो हम देखकर चकित होंगे कि प्रकृति नटीने उसका रूप किस तरह बदल दिया है और उसे क्यासे क्या बना दिया है। पेटमें एक क्रिया और हो जाती है अर्थात् पेटकी गर्मीके कारण चर्बी पिघलकर पतली हो जाती है।

इसी अवस्थामें चर्बी अन्नरसके साथ अन्तड़ीमें पहुंचती है। अन्तड़ीमें चर्बीपर पित्तकी क्रिया होने लगती है। पित्तके प्रभावसे उसकी छोटी छोटी बूंदें बन जाती हैं और इसका एक दूधिया घोल बन जाता है।

छोटी अंतड़ियोंकी दीवार जिस मांससे बनी है उसमें आपसे आप गति हुआ करती है। इस गतिका ठीक नमूना आपको केंचुयेकी चालमें मिलेगा। अर्थात् अंतड़ियोंमें एक लहर उठती है। इस लहरके दो काम हैं। एक तो अंतडियोंमें स्थित अन्नरसपर दबाव पड़ता है और बची हुई चर्बी भी अन्न-रसमें खूब घुलमिल जाती है और दूसरे रस धीरे धीरे नीचेकी ओर सरकता है। पाचन रसोंकी क्रिया बराबर हुआ करती है और पचने योग्य पदार्थ बराबर पचा करते हैं।

पाचनका सारा काम छोटी अंतड़ियों तक समाप्त हो जाता है। इसके बाद पाचनका काम नहीं होता। छोटी अंतड़ियोंसे होकर अन्नरस बड़ी अंतड़ियोंमें पहुंचता है।

बड़ी अंतड़ियोंके निर्माणके सम्बन्धमें हमने ऊपर कुछ नहीं लिखा और न अधिक लिखनेकी आवश्यकता होगी। उदरमें यह जिस तरहसे स्थित हैं इसका भेद तो हमने ऊपर लिख दिया है। छोटी अंतड़ियां पेटके अधोभागमें दाहिनी ओर समाप्त होती हैं और यहींसे बड़ी अंतड़ियां आरम्भ होती हैं। वहांसे बड़ी अंत-ड़ियां ऊपरको चढ़ती हैं और यकृत तथा प्लीहाको छूती हुई पेटके नीचेसे बायीं ओर जाती हैं और बायीं ओरसे पुनः नीचे उतरती हैं।

बड़ी अंतड़ियोंमें न तो कोई विशेष प्रकारका रस बनता है और न पाचनका कोई काम होता है। यहांसे केवल रक्त पोषण पदार्थको अन्नमेंसे खींचकर अपनेमें मिला लेता है और अन्नरस

जो अभी तक पतला था धीरे धीरे गाढ़ा होने लगता है। इस तरह बड़ी अंतड़ियोंके सिकुड़नेसे ज्यों ज्यों अन्नरस आगेको बढ़ता है उसमेंका पौष्टिक पदार्थ जलके साथ निकलकर रक्तमें मिलता जाता है और रस सूखकर गाढ़ा होता जाता है। बड़ी अंतड़ियोंके अन्ततक जाते जाते यह रस एक दमसे गाढ़ा हो जाता है और मलद्वारसे होकर बाहर निकल जाता है। इसे ही हम मल या विष्ठा कहते हैं।

भोजनमें सब चीजें पचने योग्य नहीं होतीं। इसके अलावा पचनेवाली वस्तुओंका भी पाचन पूरी तरहसे नहीं हो जाता। प्रत्येकका कुछ न कुछ भाग बिना पचा रह ही जाता है। साथ ही पचे हुए भागमेंसे समस्त पदार्थोंको रक्त खींचकर अपनेमें मिला भी नहीं लेता। यही सब पदार्थ मल होकर शरीरसे बाहर निकल जाते हैं।

जिस समय हम शौच (पाखाना) होनेके लिये बैठते हैं हम जोरसे सांस खींचते हैं। इसका कारण यह है कि जिन सेलोंसे मलद्वारका निर्माण हुआ है उनकी जमावट मलद्वारपर विचित्र तरहसे हुई है। ये गोलाकारमें गाड़ीके पहियेकी तरह जमायी हुई हैं और सदा बाहरसे भीतरकी ओर खिंची रहती हैं। अर्थात् इनका सिकोड़ इस तरहसे होता है कि जबतक भीतरसे किसी वस्तुका जोरसे दबाव न पड़े ये नहीं खुलती। इसलिये हमें इतने जोरसे सांस लेना पड़ता है जिससे फेफड़ोंके नीचे रहनेवाले सभी अङ्गोंपर जोर पड़े और उनके आकुञ्चन या दबावसे मलका द्वार खुले और मल बाहर आवे।

प्रश्न यह उठता है कि यदि मल भोजन किये हुए पदार्थके अतिरिक्त और कुछ नहीं है तो फिर इसमें बदबू कहांसे आजाती है। यह बदबू अन्तड़ियोंमें आकर पैदा होती है। अंतड़ियोंमें अनेक तरहके ऐसे कीट निवास करते हैं जो इसी बचे खुचे पदार्थपर अपना जीवन बिताते हैं। ये अनेक तरहके हानिकारक पदार्थ पैदा करते हैं और इन्हीं पदार्थोंके कारण मलमें बदबू आ जाती है। जिन लोगोंको कब्जकी शिकायत रहती है उनके मलमें भी अधिक बदबू रहती है। इसका कारण यह है कि मल जल्दी बाहर नहीं आता और अन्तड़ियोंमें सड़ने लगता है।

यहांतक तो हमने पाचन क्रियाका वर्णन किया है कि अन्न किस तरह पचता है और उसका शेषभाग मल बनकर किस तरह बाहर निकल जाता है। यहींपर हमें संक्षेपमें यह भी लिख देना चाहिये कि प्रत्येक स्थानमें भोजन कितनी देर तक ठहरता है।

पहले अन्न मुंहमें आता है। मुंहमें अन्न अधिक काल तक नहीं ठहरता। चबानेके बाद ही हम उसे निगल जाते हैं और अन्नप्रणाली द्वारा वह पेटमें पहुंच जाता है।

पेटमें भोजन प्रायः ४ घण्टे तक ठहरता है। पहुंचनेके थोड़ी ही देर बाद वह धीरे धीरे पक्वाशयमें रस बन बनकर जाता है पर पूरा पेट खाली होनेमें कमसे कम ४ घण्टे लगते हैं।

इसके बाद भोजन रस बनकर छोटी अन्तड़ियोंमें पहुंचता है। यहां भी वह ४ या ५ घण्टे तक रहता है।

चित्र नं० १८

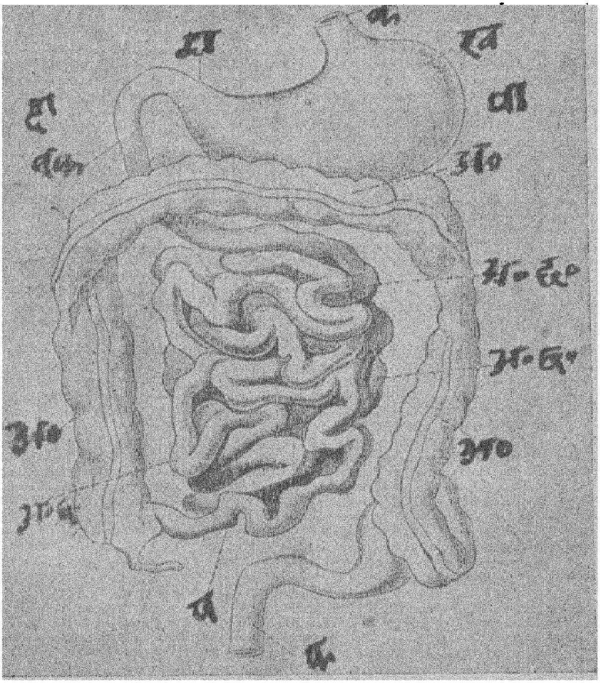

(क, ख, पा, दा वक) पेट

(अ० छ०) छोटी अंतड़ियां

(अ) बड़ी अंतड़ियां

(क) मलद्वार

चित्र नं० १९

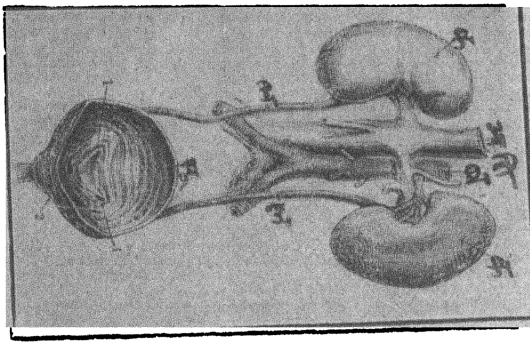

चित्र नं० २०

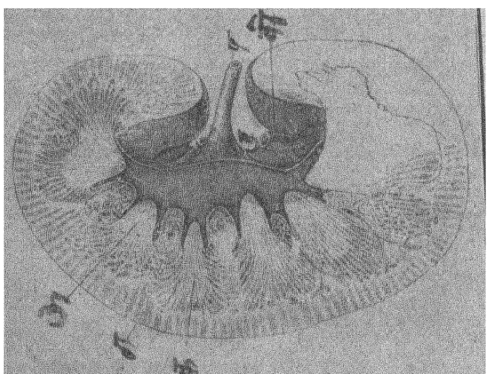

चित्र नं० १९ (क) गुर्दा (पू) मूत्राशय (ल) मूत्रप्रणाली (व) महाधमनी (अशि) अधोगा शिरा।

चित्र नं० २० (प) मूत्रप्रणाली (वो) धमनी (उ) मूत्र इकट्ठा होनेका स्थान (अ,क,ग,) गुर्देके भीतरका उभार।

बड़ी अंतड़ियोंमें भोजन केवल दो घण्टे तक रहता है। इसके बाद भोजन धीरे धीरे मलाशयकी ओर चलता है। मलाशयतक पहुंचनेमें कोई ६ घण्टे लग जाते हैं। इस तरह भोजन करनेके प्राय: १८ घण्टे बाद हमें शौच होना चाहिये। पर सबकी अवस्था एकसी नहीं होती। इससे इस समयमें कुछ फेरफार हो सकता है।

इसके लिखनेका हमारा विशेष प्रयोजन है। इससे हम यह दिखलाना चाहते हैं कि हमें हर समय भोजन नहीं करते रहना चाहिये। एक बार भोजन करके फिर हमें कमसे कम ६ घण्टे तक तो अवश्य ही अपना मुंह बन्द रखना चाहिये। एक बारका खाया हुआ अन्न जबतक पेटसे बाहर न हो जाय तबतक पेटको फिर नये भोजनसे लादना नहीं चाहिये। इसके अलावा पेटकी सेलोंको भी कुछ देर तक आराम करनेका अवसर देना चाहिये। यदि वे लगातार काम करती रहेंगी तो उनकी क्या अवस्था होगी। वे जल्दी घिस जायंगी और बेकाम हो जायंगी।

एक बार हम कह आये हैं कि शरीरके अङ्ग ठीक मशीनके पुर्जोंकी भांति हैं। जैसे लगातार काम करते रहनेसे वे घिसकर बेकाम हो जाते हैं उसी तरह शरीरके अङ्ग भी बेकाम हो जायंगे। मशीनके पुर्जे तो बन भी सकते हैं, एकको बदलकर दूसरा भी लगाया जा सकता है पर शरीरके अङ्ग तो जहां एक बार नष्ट हुए कि वे सदाके लिये बेकाम होगये फिर उनका सुधार होना जरा कठिन है। इसलिये उनके प्रयोगमें बड़ी सावधानीकी जरूरत

है। इसीलिये हम कहते हैं कि एक बार भोजन करलेनेपर दूसरी बार भोजन करनेमें कमसे कम इतने समयका व्यवधान देना चाहिये जिससे अन्न भली प्रकार पचकर पेटसे बाहर चला जाय और पेटको कुछ आराम करनेका भी समय मिल जाय।

यहांतक तो पाचन क्रियाका वर्णन हुआ। इसके बाद अब हम यह बतलानेका यत्न करेंगे कि भोजनमेंसे पौष्टिक पदार्थ रक्तमें किस तरह पहुंचता है।

भोजनका आत्मीकरण

भोजनमेंसे पौष्टिक पदार्थ निकालकर रक्तमें ले जाने तक दो क्रियायें होती हैं। एक तो भोजनमें मिले हुए पदार्थोंका पचना और दूसरे उनका रक्तमें पहुंचना और उसमें मिलना। केवल पाचन क्रिया पूरी हो जानेसे और अन्नमें मिश्रित पदार्थके पच जानेसे ही यह नहीं समझ रखना चाहिये कि भोजनका काम पूरा हो गया। कभी कभी बीमारी विशेषके कारण पचा पचाया अन्न भी अपने पौष्टिक पदार्थको रक्तको दिये बिना ही मल द्वारा बाहर निकल जाता है। इसलिये अन्नकी क्रियाकी पूर्ति तभी हो सकती है जब अन्न पूरी तरहसे पच जाय और उसमें मिले पौष्टिक पदार्थ रक्तमें चले जाय। पहली क्रियाको *पक्कीकरण या एकीकरण* कहते हैं और दूसरी क्रियाको *आत्मीकरण* कहते हैं। यहांपर हम यही बतलायंगे कि अन्नमें मिले पौष्टिक पदार्थका पक्कीकरणके बाद आत्मीकरण किस प्रकार होता है।

यह तो हम बतला ही चुके हैं कि अन्न मुंहमें गया और दांतोंने उसे चबाना शुरू किया कि उसका पचना आरम्भ हो जाता है। पर यहांपर अन्नका आत्मीकरण नहीं होता। अन्नका शक्करी भाग लारके संयोगसे पच जाता है और फिर अन्न गोली बनकर अन्नप्रणाली द्वारा पेटमें प्रविष्ट हो जाता है। हमने बतलाया है कि पाचन क्रियाका सबसे बड़ा काम यहीं आमाशय रसकी सहायतासे होता है। पर पक्वीकरण जितना अधिक होता है आत्मीकरण उतना ही कम। अन्नमें स्थित प्रोटीड नामक पदार्थका यत्किंचित आत्मीकरण यहांपर होता है, नहीं तो शेष अन्न रस बनकर पक्वाशयके द्वारसे छोटी अंतड़ियोंमें चला जाता है। अन्नके पौष्टिक पदार्थोंका आत्मीकरण ज्यादात इन्हीं छोटी और फिर बड़ी अंतडियोंमें होता है।

हम पीछे बतला आये हैं कि अन्तड़ियोंकी भीतरी तहपर जो श्लैष्मिक कलाकी तह रहती है उसमेंसे होकर पतले पतले बाल निकले देते हैं जिनका नाम *ग्राहकतन्तु* है अर्थात् ये अन्नरस-मेंसे पौष्टिक पदार्थको खीच खींचकर रक्तमें ले जाते हैं और अनावश्यक तथा बिना पचे हुए पदार्थको जहांकातहां छोड़ देते हैं जो बड़ी अन्तड़ियोंमें होता हुआ मलद्वारसे बाहर निकल जाता है।

आत्मीकरणका जो काम छोटी अन्तड़ियोंमें पूरा नहीं हुआ रहता वह बड़ी अन्तडियोंमें होता है। एक तरहसे बड़ी अन्तड़ि-

योंका कामही यही है। बड़ी अन्तडियोंमें जाकर अन्नकी पाचन क्रिया समाप्त हो जाती है। जो कुछ पचना रहता है छोटी अंतड़ियोंतक ही समाप्त हो जाता है। बड़ी अंतड़ियां केवल दो काम करती हैं। एक तो ये अन्नको मलाशयतक पहुंचाती हैं और दूसरे इनमें पौष्टिक पदार्थोंका आत्मीकरण होता है।

यहींपर हम संक्षेपमें यह भी लिख देना चाहते हैं कि भोजनके किस पदार्थका आत्मीकरण पाचन क्रियाके किस अङ्गमें अधिकतर होता है।

प्रोटिड—प्रोटीड पेटमें पचता है। इसका आत्मीकरण थोड़ा बहुत वहीं पेटमें ही हो जाता है। इसके शेष भागका आत्मीकरण छोटी अंतड़ियोंमें जाकर होता है। हम एक स्थान-पर कह आये हैं कि दालोंमें प्रोटीडकी मात्रा अधिक रहती है, उनमें भी मूंगकी दालमें सबसे अधिक प्रोटीड रहता है। इसलिये मूंगकी दालका पचनेके बाद जितना अधिक आत्मीकरण होता है उतना अधिक अन्य दालोंका नहीं होता। चनेकी दालका आत्मीकरण सबसे कम होता है। दूध और मांसमें प्रोटीडकी जो मात्रा रहती है उसका आत्मीकरण पूरी तरहसे हो जाता है अर्थात् इनकी पूरी मात्राका आत्मीकरण हो जाता है। इसलिये जो लोग मांसका सेवन नहीं करते उन्हें दूधका सेवन अवश्य करना चाहिये।

शक्कर—पाचन क्रियाका जो विवरण दिया गया है उससे मालूम होगा कि शक्करकी पाचन क्रिया अधिकतर मुंहमें और

यदि अन्न पूरी तरहसे चबाया न जाय तो पेटमें जाकर होती है। पेटके बाद फिर शक्करकी पाचन क्रिया नहीं होती, पर शक्करका लेशमात्र भी आत्मीकरण इन स्थानोंपर नहीं होता। शक्करका आत्मीकरण छोटी अंतड़ियोंमें होता है। वहांसे होकर शक्कर यकृतमें पहुंचती है। यकृत शक्करका खजाना है। रक्तको जितनी शक्करकी आवश्यकता प्रतीत होती है उतनी शक्कर तो वह ले लेता है बाकी शक्कर यकृतमें जमा हो जाती है। यकृतको सेलें इस शक्करसे शर्कराजन—नामक रस तैयार कर लेती हैं और जमा रखती हैं। जब रक्तको शक्करकी आवश्यकता पड़ती है तो यकृतकी ये सेलें उस रससे पुनः शक्कर तैयार कर लेती हैं और रक्तको दे देती हैं।

हमारे रक्तको शक्करकी बहुत ही कम जरूरत पड़ती है। हम इसका ठीक अन्दाज तो नहीं बतला सकते पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि यदि हम मीठा न भी खायं तो हमारा काम उतनीही शक्करसे चल जायगा जितनी अन्नमें मिली रहती है। तोभी लोग शक्कर या मीठेका अधिक सेवन करते हैं। इससे यकृतको अधिक परिश्रम करना पड़ता है। कितने लोग तो इतनी अधिक शक्कर खा जाते हैं कि उसका रोकना यकृतकी शक्तिके बाहर हो जाता है अर्थात् उसका खजाना भर जाता है और अधिक शक्कर रक्तमें बहने लग जाती है। जिस समय यह मूत्राशयमें पहुंचती है तो मूत्राशय इसे मूत्रके साथ शरीरसे बाहर करता है। यदि मूत्रसे शक्कर अधिक आने लगती

है तो लोग इसे प्रमेह की बीमारी कहते हैं। इसकी पहचान यह है कि पेशाबकी हाजत बार बार मालूम होती , किन्तु किसीको तो इतना अधिक पेशाब होता है कि वह अपनेको सम्हाल ही नहीं सकता और धोतीमें पेशाब कर देता है। दूसरी पहचान यह है कि जहां पेशाब कीजिये वहां चींटियां आकर चाटने लगती हैं। यदि यह बीमारी हो जाय तो दो काम फौरन कर डालने चाहियें। एक तो ऐसे पदार्थोंका सेवन (खाना) एकदमसे त्याग देना चाहिये जिनमें शक्कर मिली हो और दूसरे शारीरिक परिश्रम छोड़ देना चाहिये। शरीरके अवयवोंको पूरा आराम देना चाहिये।

चर्बी—जहां चर्बी पचती है वहीं उसका आत्मीकरण भी होता है। छोटी अंतड़ियोंमें ही उसका आत्मीकरण होता है। हम ऊपर कह आये हैं कि चर्बीके पचनेके लिये पित्तका होना जरूरी है। उसी तरह चर्बीके आत्मीकरणके लिये भी पित्तका होना जरूरी है। यदि किसी बीमारीके कारण पित्तका बनना कम हो जाता है तो चर्बीका आत्मीकरण नहीं होता और वह ज्योंका त्यों मल द्वारा शरीरसे बाहर हो जाता है। यदि विष्ठा या मलका रङ्ग सफेद रहे तो समझ लेना चाहिये कि चर्बीका आत्मीकरण अच्छी तरह नहीं हुआ है।

लवण—लवणका आत्मीकरण थोड़ा बहुत पेट, मुंह और छोटी अंतड़ियोंमें होता है।

जल—जलका आत्मीकरण विशेषकर छोटी अंतड़ियोंमें

होता है। पर जो जल हम भोजनके साथ ग्रहण करते हैं उसका आत्मीकरण बहुत थोड़ा पेट और छोटी अंतड़ियोंमें हो जाता है। पर इसका अधिक भाग ज्योंका त्यों बड़ी अंतड़ियोंमें चला जाता है और वहीं उसका आत्मीकरण होता है।

यहींपर एक बात और जान लेनी चाहिये कि जो रक्त अन्नसे पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करता है वह शुद्ध रक्त नहीं होता बल्कि अशुद्ध रक्त रहता है। अन्नमार्गकी भीतरी तहपर इन अशुद्ध रक्तकी नालियोंका अर्थात् शिराओंका जाल बिछा रहता है। अन्नसे पौष्टिक पदार्थ छन छनकर इन्हींमें जाता है और रक्तके साथ शुद्ध होनेके लिये दाहिने ग्राहक कोष्ठमें पहुंचता है।

भोजनका अन्तिम परिणाम

यहांतक तो हमें यह मालूम हुआ कि पचनेके बाद आत्मीकरणकी क्रिया द्वारा अन्नका पौष्टिक पदार्थ रक्तमें मिल जाता है। अब हमें यह जानना बाकी है कि रक्तमें मिलकर यह कहां जाता है तथा इसका अन्तिम परिणाम क्या होता है।

यह तो हम बतला ही चुके हैं कि अन्नका पौष्टिक पदार्थ अशुद्ध रक्तमें मिलता है और शुद्ध होनेके लिये यह दाहिने ग्राहक कोष्ठमें पहुंचता है। यह रक्त फेफड़ोंमें शुद्ध होकर बायें क्षेपक कोष्ठसे होकर शरीरकी परिक्रमा करनेके लिये बाहर निकलता है और शरीरका चक्कर मारने लगता है। छोटी छोटी नलियों द्वारा यह शरीर भरमें फैल जाता है और पौष्टिक पदार्थ देता है। पीछे हम लिख आये हैं कि शरीरकी क्रिया—चलना, फिरना,

उठना, बैठना, लिखना, पढ़ना आदि—में हम जो शक्ति व्यय करते हैं उसकी उत्पत्ति शरीरको सेलों द्वारा होती है। इस शक्तिके उत्पन्न करनेमें शरीरको सेलें बराबर टूटती फूटती रहती हैं। इसलिये इनकी मरम्मत तथा नयी सेलोंको तैयार करनेके लिये हमें इन पौष्टिक पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है। रक्तकी धमनियां जहां केशिकाओंका रूप धारण करती हैं वहींपर रक्त-मेंसे यह पौष्टिक पदार्थ निकल निकलकर शरीरकी सेलोंमें मिल जाता है और शरीरकी सेलें टूटते समय जो अनावश्यक पदार्थ तैयार करती हैं वह रक्तमें मिल जाता है और शरीरसे बाहर निकल जाता है। यही अन्नका अन्तिम परिणाम है।

इस तरह अन्नका आरम्भ और अन्त इस प्रकार हुआ—

जिस समय हमने अन्नको मुंहमें डाला उसी समयसे अन्नका आरम्भ हुआ। मुंहमें रखकर अन्नको चबाया। इससे शक्करपर लार नामी रसकी क्रिया हुई और अन्नमेंसे शक्करका भाग पचा। इसके बाद कण्ठके नीचे उतरकर अन्नप्रणाली द्वारा अन्न पेटमें उतरा। पेटमें आमाशयिक रसकी क्रिया आरम्भ हुई और प्रोटीड तथा शक्करका शेष भाग पचा। प्रोटीडका आत्मीकरण भी यहीं अंशतः हुआ। पेटमें अन्न पूरी तरह मथा जाता है और वह जलके साथ घुलकर रस बन जाता है। तब वह नीचे खिसकता है और छोटी अंतड़ियोंमें जाता है जहां अधिकतर चर्बी पचती है। इसके लिये यकृतसे पित्त नामका रस बन बनकर आता है। छोटी अंतड़ियोंकी श्लैष्मिक कलामें बालदार रेशे अन्न-

रसमेंसे पौष्टिक पदार्थ खींचते या ग्रहण करते हैं और आस पास फैली हुई रक्तकी केशिकाओंमें पहुंचाते हैं। इसके बाद अन्न-रस बड़ी अंतड़ियोंमें जाता है। यहां पाचन क्रियाका कोई कार्य नहीं होता। यहां केवल अन्न-रसमेंसे पौष्टिक पदार्थ--जो बचा रहता है—रक्तमें मिल जाता है—विशेषकर जल—और शेष भाग मलाशयसे होता हुआ मलके रूपमें बाहर निकल जाता है। अन्नसे जो पौष्टिक पदार्थ रक्तमें जाता है वह शुद्ध होकर धमनियों द्वारा शरीरके विविध अङ्गोंमें पहुंचता है और वहां केशिकाओंकी सहायतासे प्रत्येक अङ्गकी सेलोंका पोषण करता है। पोषणसे बचा हुआ पदार्थ कुछ तो शरीरमें ही जमा हो जाता है—जैसे चर्बी—जो आवश्यकताके समय काममें आता है और कुछ विविध मार्गोंद्वारा शरीरसे विविध रूप धारण कर अलग हो जाता है। इसका वर्णन इस छोटीसी पुस्तकमें नहीं दिया जा सकता।

अन्तमें अब भोजनके विषयमें दो चार आवश्यक बातें लिखकर हम इस प्रकरणको समाप्त करेंगे।

१—पाचन क्रियासे हमें जो कुछ विदित हुआ उससे हमें इस बातके लिये सदा सतर्क रहना चाहिये कि हम वे हो पदार्थ खायं जो शीघ्रतासे पच जायं, और जिनसे हमें अधिकसे अधिक पौष्टिक पदार्थ मिले। जिस भोजनमें पौष्टिक पदार्थ ही कम पाया जाता है और जिसके पचनेमें भी अधिक समय लगता है उससे सिवा हानिके हमारा लाभ नहीं हो सकता। एक तो

उसके पचानेमें अङ्गोंको अधिक परिश्रम करना पड़ेगा और दूसरे उससे शरीरका पोषण भी यथेष्ट परिमाणमें नहीं होगा, इससे सेलें कमजोर पड़ती जायंगी और शरीर क्षीण हो जायगा, काम करनेकी शक्ति घट जायगी और अन्तमें वह बेकार हो जायगा।

२—भोजन साफ और स्वच्छ होना चाहिये। गन्दे बरतनोंमें तथा गन्दी जगहमें भोजन कभी भी नहीं पकाया जाना चाहिये। भोजन जहांतक हो ताजा ग्रहण कर लेना चाहिये पर यदि भोजन पकाकर रखनेकी नौबत आवे तो उसे इस तरह रखना चाहिये जिससे वह स्वच्छ रहे और कीडों, मकोडों तथा मक्खियोंका संसर्ग उससे न हो।

३—भोजन देखनेमें अच्छा मालूम हो, उसमेंसे अच्छी गन्ध आती हो तथा खानेमें स्वादिष्ट हो।

४—भोजन करनेके बाद किसी तरहका शारीरिक श्रम नहीं करना चाहिये। अङ्गरेजी शिक्षाका सबसे बड़ा यह दुष्परिणाम है कि भोजनके बाद ही स्कूलके लिये भागना पड़ता है। कभी कभी तो देर हो जानेका भय बालकोंको इस तरह सताता है कि वे बिना पेटभर अन्न खाये ही, बिना चबाये ही और केवल पानीके सहारे अन्न पेटमें उतारकर भागते हैं। इससे लडकोंका स्वास्थ्य जल्दी बिगड़ जाता है। इस विषयमें हमारी प्राचीन गुरुकुल प्रणाली सबसे उत्तम थी।

आठवां प्रकरण

मूत्राशय अथवा गुर्दा

प्रकृतिका यह धर्म है कि वह सदा पदार्थोंको घुमाया फिराया करती है अर्थात् यदि एक स्थानपर वह एक पदार्थ इकट्ठा करती है तो वहांसे वह दूसरी तरहका पदार्थ उठा ले जाती है। सदा एक जगह पदार्थ इकट्ठा ही नहीं करती रहती। इस नियमके अनुसार जब रक्तमें अनेक तरहके पदार्थ आ आकर इकट्ठे होते हैं तो उसमेंसे उसी मात्रामें अन्य पदार्थ बाहर भी निकलते होंगे। जो कुछ अबतक लिखा गया है उससे प्रत्यक्ष है कि रक्त शरीरके विविध अङ्गोंको सेलोंके लिये एक प्रकारका ईंधन है। इनके संसर्गमें आकर रक्त इनकी गर्मी या तापके प्रभावसे जल जाता है। रसायन शास्त्र द्वारा आपको विदित होगा कि जलनेकी क्रियामें किसी वस्तुका नाश नहीं होता। जो वस्तु जलाई जाती है उसका रूपान्तरमात्र होजाता है। साधारण अवस्थामें हम उसका स्थूल रूप देखते हैं, जैसे लकड़ीको जलाकर हमने कोयला और राख बना दी। इस तरह लकड़ीका नाश नहीं हुआ, केवल उसका रूप बदल गया और अब हम उसे लकड़ी रूपमें न देखकर कोयले और राखके रूपमें देखते हैं। विज्ञान शास्त्रमें इसी बातको दूसरे शब्दोंमें कहते हैं।

विज्ञानके द्वारा हमें मालूम होता है कि हमारे शरीरकी

रचना गैसों द्वारा हुई है। कई प्रकारकी गैसें हैं जिनके संयोगसे यह शरीर बना है और जो अन्न हम खाते जल पीते अथवा हवा सांस द्वारा भीतर ले जाते हैं उनमें भी येही पदार्थ वर्तमान हैं और शरीरको सेलें रक्तसे इन्हीं पदार्थोंको लेकर अपना पोषण करती हैं। इसकी जांच कैसे हो सकती है?

यदि हम मांसका एक टुकड़ा लेकर सुखा डालें या शरीरसे थोड़ा रक्त निकालकर उसे जमाकर सुखा डालें और उसे जलाकर रसायनिक क्रिया द्वारा उसकी परीक्षा करें तो हम देखेंगे कि जल जानेपर उसमेंसे चार पदार्थ निकलते हैं—जल, कार्बोनिक एसिड, अमोनिया और क्षार। शरीरको बनावट जैसाकि हम ऊपर कह आये हैं निम्न लिखित पदार्थोंसे हुई है:—नाइट्रोजन, कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन, सल्फर, फास्फरस तथा कुछ अन्य गौण पदार्थ। नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजनके एकीकरणसे अमोनिया नामक पदार्थ बनता है। हाइड्रोजन और आक्सिजनके एकीकरणसे जल बनता है।

शरीरकी सेलें किसी भी प्रकारसे क्यों न जलाई जायं, चाहे उसकी सेलोंको आगमें जलाइये, या मर जानेपर उसे जमीनमें गाड़ दीजिये और मिट्टीके असरसे इन्हें जलने दीजिये, चाहें जीतेही रक्तके साथ इन्हें जलने दीजिये, परिणाम सदा एकसा होगा। शरीरके विविध अङ्ग जब कभी जलेंगे उनसे वेही उपरोक्त चारों पदार्थ अर्थात् कार्बोनिक एसिड गैस, जल, अमोनिया और क्षार पैदा होंगे।

हम यह भी जानते हैं कि शक्तिकी पैदाइशके लिये शरीरकी सेलें सदा काम करती रहती हैं और इस तरहकी क्रियामें सदा उनका नाश हुआ करता है। इस तरह सेलोंके नाशसे शरीरमें हर वक्त जल, कार्बोनिक एसिड गैस, क्षार और अमोनिया बना करते हैं और रक्तमें आ आकर मिला करते हैं। इन पदार्थोंको रक्तसे निकालकर बाहर करना तथा रक्तको शुद्ध करना नितान्त आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त हमारे शरीरमें अप्राकृतिक उपायों द्वारा भी जल सदा जाया करता है। दिनभरमें कमसे कम २॥ या ३ सेर जल हम पी जाते हैं। यह जल भी यदि निकाला न जाय और सदा इकट्ठा होता रहे तो शरीरके लिये इसे धारण करना भी कठिन हो जाय। इस जलको भी शरीरसे बाहर निकालना आवश्यक है। इस स्थानपर एक प्रश्न उठ सकता है। लोग पूछ सकते हैं कि जब जलको शरीरसे बाहर निकालनेकी ही आवश्यकता पड़ती है तो फिर उसे शरीरके भीतर क्यों डाला जाता है? बात यह है कि शरीरके भीतर जलकी आवश्यकता दो तरहसे पड़ती है। एक तो शरीरके भीतरी अवयवोंको सदा तर रखना नितान्त आवश्यक है, दूसरे जबतक अन्न घुलकर रस न हो जाय वह रक्तसे मिलही नहीं सकता। इसके अलावा जिस तरह हमें बाहरी भागको धो मलकर साफ रखना पड़ता है उसी तरह हमें शरीरके भीतरी अङ्गको भी धो मलकर साफ रखना जरूरी है। इसके लिये भी शरीरके भीतर जलकी आव-

श्यकता पड़ती है। यदि जलका यह स्रोत अनवरत रूपसे हमारे शरीरमें न बहता रहे तो हमारा दम घुट जाय और हम बेकार हो जायं। इसलिये यह जल आवश्यक है और जब यह अपना काम कर लेता है तब गन्दा हो जाता है और इसलिये इस गन्दे जलको शरीरसे बाहर निकाल देना भी आवश्यक है।

फेफड़ेका वर्णन करते समय हमने यह भी कहा था कि रक्तको शुद्ध करने, उसमेंसे जहरीला पदार्थ निकालकर बाहर करने तथा इस जलको भी बाहर निकालनेके लिये शरीरमें तीन मार्ग हैं।

पहला मार्ग फेफड़ा है। हम दिखला चुके हैं कि हवाद्वारा फेफड़ेमें रक्त शुद्ध होता है। जो हवा सांस द्वारा हम बाहर निकालते हैं उसमें जहरीला पदार्थ, कार्बोनिक एसिड गैस, शरीरसे बाहर निकता है। साथ ही हम यह भी बतला चुके हैं कि इस हवाके साथ जलका भी कुछ अंश शरीरसे बाहर निकल जाता है। पर जलको बाहर निकालनेके दो प्रधान अंग हैं। एकको *मूत्राशय* या *गर्दा* कहते हैं और दूसरेको *चमडा* या *त्वचा* कहते हैं। चमड़ेका वर्णन हम कहीं आगे करेंगे। इस प्रकरणमें हम यह दिखानेका प्रयत्न करेंगे कि मूत्राशयसे रक्तकी शुद्धि किस प्रकार होती है और इसमेंका जल किस प्रकार शरीरसे बाहर निकल जाता है।

मूत्राशयकी रचना

मूत्राशय धड़के निचले भागमें पेटके पीछे होता है। यदि

आप उदर फाड़कर पेट और अन्तड़ियां बाहर निकाल लें तो आप देखेंगे कि बारहवीं पसलीके ठीक नीचे रीढ़के दोनों तरफ नीले रङ्गके दो गुटके लटक रहे हैं। इन गुटकोंका आकार ठीक सेमके दानेकी तरह होता है। सेमके दो दानोंको इस तरहसे रखिये कि उनका काला हिस्सा अर्थात् उनका मुंह ठीक सामने पड़े और दोनोंमें छेद कर तागेमें पिरोकर किसी डण्ठलमें बांधकर सामने रखिये तो आपको मूत्राशयकी बनावटका पता लग जायगा। मूत्राशयका आकार ठीक इसी तरहका है। जिस डण्ठलमें आपने दोनों दानोंको सूतसे बांधा है वे तो महाधमनी और महाशिराके स्थानपर हैं जो ऊपरसे नीचेको चली गई हैं और जिस धागेमें आपने दोनोंको पिरोया है वे उस धमनीकी और शिराकी शाखा हैं जो मूत्राशयमें आती जाती हैं। इसके पास ही एक सूतका धागा और पिरो दीजिये और उसे पहलेवाले सूतोंमें मिला दीजिये। यही मूत्रप्रणाली है। मूत्राशयमें यह फूली रहती है और शिरासे सटी रहती है। गुर्देके ऊपर सौत्रिक तन्तुकी बनी एक झिल्ली चढ़ी रहती है।

किसी मृत प्राणीके गुर्देको लेकर उसकी परीक्षा कीजिये। ध्यान रहे कि एक भी नली कटी न हो। पहले चाकू लेकर गुर्देको लम्बाईके रुख एक सिरेसे दूसरे सिरे तक काट डालिये। गुर्देका भीतरी भाग सर्वत्र एकसा नहीं दिखाई देगा। आप देखेंगे कि बीचके हिस्सेसे किनारेका हिस्सा हलके रङ्गका है और साथ ही उसमें कुछ उभारसा है। यह

उभार जालकी तरह बिछा है। इनमें छेद भी हैं और इनका मुंह मूत्रप्रणालीकी ओर खुला है [देखो चित्र नं० १६]

गुर्देकी बनावट नालियोंका एक समूह है। गुर्दा इन्हीं नालियोंके समूहसे बना है। ये नालियां लम्बी बहुत होती हैं पर चौड़ी बहुत ही कम होती हैं। इन्हीं नालियोंके साथ साथ केशिकाओंका जाल भी बिछा है। बाहरसे देखनेसे आपको मालूम होगा कि ये नालियोंके भीतर हैं पर वास्तवमें ये उनसे एक दम भिन्न और अलग हैं। ये नालियां गुर्देमें इधर उधर तोड़ मरोड़ खाती स्थान स्थानपर आ आकर दूसरी नालियोंसे मिलती हैं। इस तरह धीरे धीरे ये नालियां बड़ी होती जाती हैं। उभारके छेदोंसे निकल निकलकर मूत्र इन्हीं नालियोंमें आता है और मूत्रप्रणालीमें पहुंचता है [देखो चित्र नं० २०]

मूत्राशयकी बनावटके बारेमें इतना ज्ञान लेनेके बाद अब यह देखना है कि रक्तकी शुद्धि इसमें किस प्रकार होती है।

बृहद् धमनीकी जो शाखा नीचे आती है उससे दो नालियां निकलकर दोनों गुर्दोंमें प्रवेश करती हैं। भीतर जाकर इन नालियोंकी शाखायें फूटने और फैलने लगती हैं। इनका विस्तार इतना अधिक हो जाता है कि ये जालकी तरह फैल जाती हैं। केशिकाकी दीवार इतनी पतली होती है कि इसमेंसे जलका भाग चू चूकर बाहर निकलने लगता है और यह छनछनाकर नालियोंमें प्रविष्ट होने लगता है। इस तरह छनकर जलका अंश अन्य अन्य जहरीले या अशुद्ध पदार्थोंको लेकर मूत्रा-

शयकी उभारमें पहुंचता है। उभारके छेदोंमेंसे निकलकर रक्त मूत्रप्रणालीकी नलियोंमें पहुंचता है। इसे मूत्र कहते हैं।

इस नलीके दो भाग होते हैं। प्रत्येक भाग हर एक गुर्देसे निकलता है। गुर्देमें बना हुआ मूत्र इनके द्वारा आकर मूत्राशयमें इकट्ठा होता है। मूत्राशयसे मूत्रमार्ग नामकी नली निकली है। इसीके द्वारा मूत्र बाहर निकलता है। मूत्रमार्गके आरम्भिक द्वारपर मांसका जो पिण्ड जमा है उसकी बनावट इस तरहकी होती है कि वह सदा सिकुड़ा रहता है। जब हमें पेशाबकी हाजत मालूम होती है तब हम जोर करते हैं और जोरके दबावसे नलीका द्वार खुल जाता है और मूत्र बाहर निकल आता है। यही कारण है कि मूत्र हमेशा टपका नहीं करता।

नीरोगी मनुष्यके शरीरसे २४ घण्टेमें कमसे कम १। सेर और अधिकसे अधिक १॥ सेर मूत्र निकलना चाहिये। ऋतुके कारण इस मात्रामें घटती बढ़ती भी हो सकती है, जैसे गरमीके दिनोंमें पसीना अधिक होता है, इसलिये मूत्रमार्गसे कम जल निकलेगा और जाड़ेके दिनोंमें पसीना बिलकुल नहीं निकलता इसलिये मूत्र अधिक निकलेगा। अच्छी अवस्थामें मूत्रका रंग प्रायः साफ होता है, बहुत ही हलका पीलापन लिये रहता है जो सहजमें दिखाई नहीं दे सकता। बीमारीके कारण इसका रंग बहुत कुछ बदल जाता है, कभी कभी गहरा पीला या

गहरा लाल हो जाता है। बुखारमें मूत्रका रंग प्रायः सरसोंके तेलके रंगका हो जाता है। मूत्रमें अधिक मात्रा तो जलकी रहती है पर कुछ अंश अमोनिया आदि जहरीले पदार्थोंका रहता है जो रक्तकी शुद्धिके समय रक्तसे बाहर निकल जाता है।

नवां प्रकरण

त्वचा या चमड़ा

हम ऊपर कह आये हैं कि हमारे शरीरमेंसे जल तथा जहरीले पदार्थोंको बाहर निकालनेके तीन मार्ग हैं। उनमेंसे दो मार्ग— फेफड़ा और गुर्दाका परिचय तो हमने दे दिया। अब तीसरा मार्ग शेष रह गया। उसका भी परिचय यहां दे दिया जायगा। इस तीसरे मार्गका नाम *त्वचा या चमड़ा* है। इसके द्वारा जल पसीना होकर निकलता है और पसीनेके साथ साथ शरीरके जहरीले पदार्थ भी शरीरसे बाहर हो जाते। इन सबोंके साथ लवण बाहर निकल जाता। पसीनेको यदि चखा जाय तो वह नमकीन मालूम देगा। इस प्रकरणमें इसी बातका वर्णन किया जायगा कि चमड़ा किस तरह पसीनेको बाहर निकालता है।

चमड़ेकी बनावट

हमारे शरीरका अङ्ग प्रत्यङ्ग ऊपरसे एक पतली खोलीसे ढंका है। इसी पतली खोलीका नाम चमड़ा है। यह चमड़ा हमारे शरीरकी रक्षाके लिये अत्यन्त आवश्यक है। यदि यह ऊपरी आवरण न हो तो हमारा चलना फिरना और उठना बैठना कठिन हो जाय क्योंकि भीतरी भाग इतना नरम तथा मुलायम होता है कि जरासे स्पर्शसे हमें पीड़ा होने लगती है।

यह चमड़ा उसी प्रकारकी सेलोंसे बना है जिस प्रकारकी सेलोंसे हमारे शरीरके अन्य भाग बने हैं। इसकी दो तह होती हैं। एक ऊपरी तह जिसे हम देखते हैं और दूसरी भीतरी तह। यह तह इस ऊपरी तहके भीतर रहती है। ऊपरी तहका चमड़ा सब स्थानपर एक समान नहीं होता। कहीं बहुत मोटा होता है और कहीं पतला होता है। जैसे, हथेली और तलवेका चमड़ा मोटा होता है और अण्डकोशका ऊपरी चमड़ा बहुत ही पतला होता है। यह ऊपरी भाग सिवा आवरण (ढक्कन) के और कोई काम नहीं करता। चमड़ेकी पोषक रक्तनलिका तथा चमड़ेको रंग देनेवाली सेलें सबकी सब नीचेवाली तहमें रहती हैं।

स्नान करते समय अथवा दीवारसे रगड़ खाकर आप देखते होंगे कि आपके शरीरसे भूसीके समान कोई पदार्थ निकलकर पानीके साथ वह जाता है या जमीनपर गिर जाता है। सिरके चमड़ेसे यह भूसी बहुत ही अधिक निकलती है। यह ऊपरी चमड़की सेलें हैं जो प्रतिक्षण घिस घिसकर गिरा करती हैं और उनके स्थानपर भीतरी तहसे नई नई सेलें आ आकर अपना आसन जमाती हैं। चमड़ेका यह ऊपरी भाग निर्जीव सा होता है। यदि कोई चातुरीसे इसमें सूई चुभोवे तो दर्द नहीं होता। यदि कोई होशियार जर्राह चाकू और कैंचीकी सहायतासे इस ऊपरी भागको चीरकर अलग कर ले तो जरा भी रक्त नहीं निकलेगा और न दर्द ही होगा। इसका एकमात्र

चित्र नं० २२

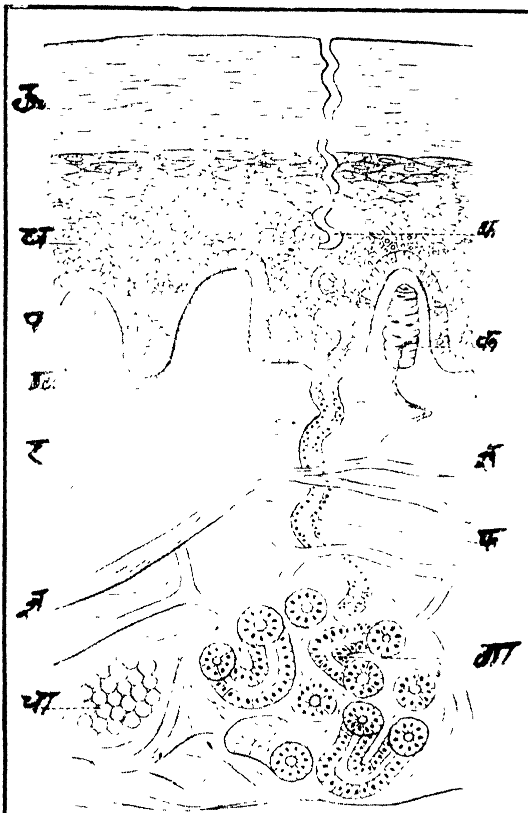

(ऊ च) उपचर्म (फ) चर्मके रेशे (प) नीचेके उभाड़ (ग) पसीनेकी गांठें (फ) गांठोंके गड्ढे (च) चर्बी (र) रक्तकी नली (ज्ञ) ज्ञानसूत्र (चा) रक्ताणु

चित्र नं० २८

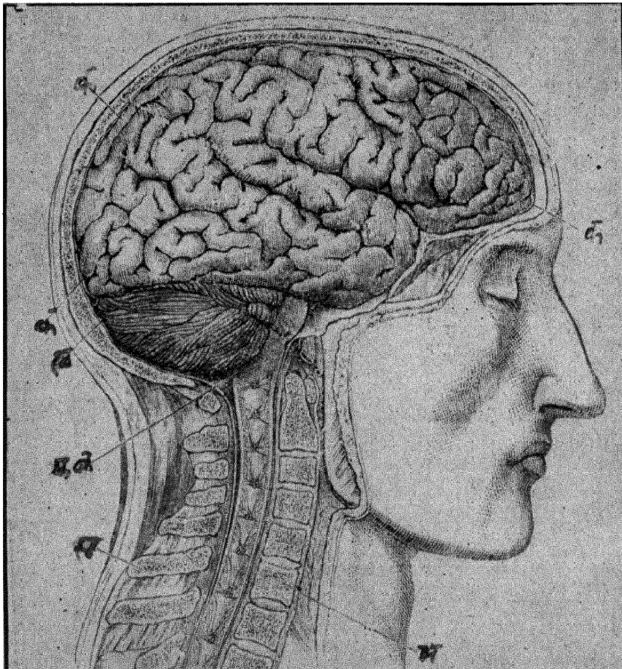

(क) बृहद् मस्तिष्क

(ख) लघु मस्तिष्क

(च) सुषुम्ना

(स,भ) रीढ़की एक हड्डी

कारण यही है कि इस ऊपरी भागमें न तो रक्तकी नलियां हैं और न ज्ञानतन्तु ही हैं। इस ऊपरी भागको *उपचर्म* कहते हैं।

उपचर्मके नीचे चमड़ेका जो भाग रहता है उसे चर्म कहते हैं। ऊपरी भागसे यह भाग कहीं अधिक मोटा होता है। सेलों-के अतिरिक्त इसमें सौत्रिक तन्तु,रक्तकी नलियां और ज्ञानसूत्र भी होते हैं। चमड़ेके ऊपर जो हम बाल देखते हैं वह भी इसी चर्मका एक अंश है। इसका उद्गम स्थान भी इसी नीचले भागमें है। इसके अलावा इस भागमें दो प्रकारकी गांठें दिखाई देंगी।

यदि आप चमड़ेका एक टुकड़ा लेकर उपचर्मकी परीक्षा करें तो आपको विदित होगा कि स्थान स्थानपर इसमें उभार हैं। ये उभार रक्त केशिकाओंके झुण्ड हैं। किसी किसी भागमें तो यह उभार इतना अधिक हो गया है कि इससे मोटी मोटी लकीरें बन गई हैं, जैसे हथेलियोंका उभार। अदालती कार्रवाइयोंके लिये बायें अंगूठेकी जो छाप ली जाती है वह इसी उभार या कंगूरोंकी छाया है। यह इतनी साफ होती है और एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें यह इतनी भिन्न होती है कि सहजमें पहचानी जा सकती है।

चमड़ेकी गांठें

हम ऊपर कह आये हैं कि चमड़ेके नीचले भाग अर्थात् चर्ममें दो प्रकारकी गांठें दिखाई देती हैं। ये ही गांठें चमड़ेके

प्रयोजनको सार्थक करती हैं। दोनों गांठें दो भिन्न भिन्न काम करती हैं।

एक प्रकारकी गांठोंसे तेलके समान चिकना पदार्थ निकलता है और दूसरे प्रकारकी गांठोंसे पसीना बनता है।

चमड़ेके दो टुकड़े काटकर शरीरसे अलग कीजिये। एक टुकड़ेको साबुनसे मलकर धो डालिये। अब दोनों टुकड़ोंको रखकर दोनोंकी जांच कीजिये। दोनोंका भेद आपको साफ मालूम हो जायगा। एक टुकड़ा चिकना मालूम होगा और दूसरा खुरखुरा या रूखा। हमारे चमड़ेमें जो चिकनाहट या चिकनाई मालूम होती है वह इसी तेलकी बदौलत है जिसे ये गांठें बना बनाकर भेजती हैं। चमड़ेको मुलायम रखनेके लिये यह चिकनाई अत्यन्त आवश्यक है। इसके न होनेसे चमड़ा एक दम रूखा होजाय और झड़ झड़कर गिरने लगे। इसके अलावा यह बालोंकी जड़ मजबूत करता है। यदि बालोंकी जड़ोंको यह तेल लगातार न मिला करे तो बाल ठहर न सकें और उखड़ उखड़कर गिरते जायं। बालोंसे क्या लाभ होता है यह आगे चलकर बतलाया जायगा।

इस गांठकी बनावट छोटी छोटी थैलियोंके समान होती है। तेल इन्हीं थैलियोंमें बनता है और पतली पतली नलियोंद्वारा—जो इन थैलियोंमेंसे निकली हैं—यह तेल बालकी जड़ोंमें तथा चमड़ेमें पहुंचता है और इन्हें चमकदार तथा मजबूत बनाता है। ये गांठें सारे शरीरमें समान नहीं पाई जातीं। किसी अङ्गमें ये अधिक होती

हैं और किसी अङ्गमें अत्यन्त कम। हाथकी हथेलियों और पांवके तलवोंमें इनका सर्वथा अभाव रहता है।

तेलकी गांठोंके नीचे पसीनेकी गांठें होती हैं। इनकी बनावट विचित्र प्रकारकी होती है। यदि आप चमड़ेको काटकर इन गांठोंका पता लगाइये तो आपको मालूम होगा कि ऊपरसे नीचेकी तहतक ये सीधी चली गई हैं पर जहां इनका अन्त होता है वहां ये सांपकी भांति चक्करदार गेडुरी मारकर बैठ गई हैं। इनकी सहायताके लिये इनके आसपास कुछ सौत्रिक तन्तु हैं और चारों ओरसे केशिकाओंका जाल इन्हें घेरकर पड़ा है। इन गांठोंका अन्त बन्द रहता है अर्थात् इसमें छेद नहीं होता। इनकी बनावट इतनी पतली होती है कि ये बाहरसे कोई भी पदार्थ अपने भीतर खींच सकती हैं। इस प्रकार पसीनेकी गांठें केशिकाओंके जालमेंसे जलका कुछ अंश अपनेमें खींचती हैं। इस जलके साथ साथ यूरिया तथा कई प्रकारके लवण आदि जहरीले पदार्थ भी इसमें आजाते हैं। इसी जलको *पसीना* कहते हैं। गांठोंसे निकलकर पसीना नलियों द्वारा ऊपर आता है और बाहर निकल जाता है। यदि आप उपचर्मकी सूक्ष्मरीतिसे परीक्षा करें तो आपको विदित होगा कि बालकी जड़ोंमें तथा उसके आसपास नन्हें नन्हें सूराख हैं। ये सूराख वास्तवमें पसीनेकी नलियोंके मुंह हैं जो बाहर उपचर्ममें खुलते हैं।

यदि पसीनेकी रसायनिक परीक्षा की जाय तो उसमें वे ही पदार्थ पाये जायंगे जो मूत्रमें पाये जाते हैं। पदार्थोंकी मात्रा

अवश्य कम होगी। पसीनेका स्वाद नमकीन या खारा होता है। इससे मालूम होता है कि इसमें लवणका अंश अधिक होता है। पसीना अवस्था भेदके अनुसार कम या बेशी निकलता है। जाड़ेके दिनोंमें पसीना कम निकलता है, गर्मीमें अधिक निकलता है। अधिक पानी पी लेनेसे भी अधिक पसीना निकलता है। बीमारियोंके कारण भी पसीनेका निकलना कम या बेशी होजाता है। व्यक्ति-विशेषके कारण भी पसीनेके निकासमें भेद पड़ता है। किसी किसीको जाड़ेमें भी अधिक पसीना आता है और किसी किसीको गर्मीमें भी बहुत कम पसीना निकलता है। इसका सम्बन्ध नाड़ीसूत्रसे है। इसलिये इस संबन्धमें इस स्थान पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

बाल

चमड़ेके नीचले भाग अर्थात् चर्मका वर्णन करते समय हमने लिखा है कि इसमें एक तरहके गड्ढे मिलते हैं और ये गड्ढे ही बालोंके उद्गम-स्थान हैं। इन्हीं गड्ढोंमें बालोंकी जड़ें रहती हैं। तेलकी नली इन्हीं गड्ढोंमें आकर खुलती है और बालोंको मजबूत बनाती है। इस गड्ढेकी दीवारें सेलोंकी बनी हैं। बाहर सौत्रिक तन्तुके कुछ अंश अवश्य रहते हैं। बाहर बाल कुछ झुके मालूम होते हैं। चमड़ेके भीतर भी इनकी दीवार कुछ झुकी रहती है। झुकावकी ओर मांसपेशियोंका एक परदा रहता है। यह परदा जिस समय सिकुड़ता है बाल खड़े होकर सीधे हो जाते हैं। किसी आकस्मिक घटनाके कारण हमारे रोयें खड़े हो

जाते हैं, यह इन्हीं मांसपेशियोंके कारण होता है। नाड़ीतन्तुकी क्रियासे मांसपेशियां तन जाती हैं। इनके तनावके साथ ही बाल खिंचकर खड़ा होजाता है।

जबतक बालकी जड़ोंमें कोई विकार नहीं आता बालमें जरा भी खराबी नहीं आती। पर अनेक कारणोंसे जब बालकी जड़ें खराब हो जाती हैं तो बाल सफेद होजाते हैं या खराब होजाते हैं। कभी कभी बीमारीके कारण चर्मकी गांठें तेल बनाना बन्द कर देती हैं। तेलके न पानेसे जड़ें कमजोर हो जाती हैं और बाल झरने लगते हैं। यदि जड़ें खराब नहीं हुई रहतीं तो बीमारीके दूर हो जानेपर बाल पुनः उग सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्तिके बाल एक समान नहीं होते। किसीके काले होते हैं, किसीके सफेद और किसीके भूरे। साथ ही किसीके बाल मोटे और किसीके पतले भी होते हैं, किसीके घने उगते हैं और किसीके वडिर। इसके अनेक कारण हैं जिनका दिग्दर्शन इस पुस्तकमें नहीं कराया जा सकता। एक ही मनुष्यके भिन्न भिन्न अङ्गोंमें मोटे और पतले बाल होते हैं। जिन अङ्गोंमें रगड़ अधिक पड़ती है उस अङ्गके बाल अन्य अङ्गोंके मुकाबिले अधिक मोटे होते हैं। इसका कारण यह है कि रगड़के कारण रक्तकी धमनियोंकी गति बेगवती हो जाती है। उनमें अधिक रक्त आने लगता है। अधिक रक्त आनेसे चमड़ेकी सेलोंका (बालोंका) अधिक पोषण होता है और वे जल्दी जल्दी बढ़ने तथा मोठी होने लगती हैं। यही कारण है कि जो लोग जितनी जल्दी जल्दी बाल बनवाते हैं उनके बाल उतने ही मोटे होते हैं और जल्दी जल्दी उग आते हैं।

नख या नह

जिस तरह बाल चमड़ेका भाग है उसी तरह नख भी चमड़ेका ही अंश है। भेद केवल इतना ही है कि बाल चमड़ेकी तह अर्थात् भीतरी भाग (चर्म) से निकलता है और नख उपचर्मका हिस्सा है। उपचर्मका वह भाग जो आगे बढ़ जाता है और अधिक कड़ा या सख्त हो जाता है उसे *नख या नह* कहते हैं। नखके दो भाग होते हैं—एक सजीव और दूसरा निर्जीव। सजीव भाग पीछे होता है और उसका रङ्ग लाल होता है। यदि वह कट जाय तो उसमें दर्द होता है और कभी कभी उसमेंसे रक्त भी निकल आता है। निर्जीव भाग आगे होता है। इसके काटनेसे किसी तरहका कष्ट नहीं होता। बीमारीके कारण नखका रङ्ग बदल जाता है। प्रायः वह पीला पड़ जाता है।

दशम प्रकरण

मस्तिष्क या चेतना-स्थान

यहांतक तो हम यह दिखलाते आये हैं कि हमारे शरीरके विविध अङ्गोंमें क्या क्या क्रियायें होती हैं, हमारे हाथ पैर किस तरह डोलते हैं, हमारे शरीरकी सेलोंको पोषण पदार्थ किस तरह मिलता है। पर अभीतक हमने यह कहीं नहीं बतलाया कि हम सब बातोंको किस तरह समझते हैं और जान पाते हैं। हमारे पैर चल रहे है, हमारे बदनमें दर्द हो रहा है, हमें किसीने काट लिया, हमारे हाथमें किसीने सूई चुभो दी तो हमें दर्द मालूम होने लगा, यह सब हमें किस उपायसे मालूम होता है ? कौनसी इन्द्रिय है जो हमें इन बातोंका ज्ञान कराती है तथा हमारे शरीरके अङ्गोंका संचालन किस प्रकार होता है ?

'हमारे शरीरकी रचना' शीर्षक प्रकरणमें हमने बतलाया है कि यदि आप शरीरके किसी अङ्गसे मांसका एक टुकड़ा काटकर चीरफाड़ द्वारा उसकी परीक्षा करें तो चमड़ेके नीचे चर्बीकी तहके साथ ही साथ आपको रक्तकी नालियां और सफेद सफेद पतले धागे दिखाई देंगे। इन पतले धागोंका नाम हमने *नाड़ीसूत्र* बतलाया था। ये ही नाड़ीसूत्र हमारी ज्ञानेन्द्रियके आधार हैं, इन्हींकी सहायतासे हमें अपने शरीरकी बाहरी और भीतरी सभी बातें ज्ञात होती हैं, ये ही हमारे ज्ञानके सहा-

यक हैं। ये नाड़ियां, जिन्हें हम ज्ञानसूत्र भी कहते हैं, शरीरके सभी अङ्गोंमें—विशेषकर चमड़ेमें—फैली हैं। जहां इनसे जरासा स्पर्श हुआ या कोई विशेष अवस्था हमारे शरीरमें उत्पन्न हुई कि ये नाड़ियां मूल स्थानको समाचार लेगईं। इस तरह ये दूतका काम करती हैं। इसलिये यदि इन्हें शरीरका दूत कहा जाय तो अनुचित न होगा। इनका राजा, जिसने इन्हें समाचार संग्रह करनेके लिये शरीरके भिन्न भिन्न स्थानोंमें बैठा रखा है, *मस्तिष्क* है। इन नाडियोंका उद्गम-स्थान मस्तिष्क है अर्थात् यहींसे ये नाड़ियां पैदा होती हैं और यहीं शरीरका सारा समाचार भेजती हैं।

मस्तिष्क शरीरमें सबसे ऊपर रहता है। गर्दनके ऊपरका भाग—जिसे हम सिर कहते हैं—मस्तिष्कको धारण करता है। मस्तिष्क एक पिलपिला पदार्थ है। इसका रङ्ग लाल और सफेद होता है। इसको हम यों नहीं देख सकते क्योंकि यह एक मोटी हड्डीकी दीवारसे ढका है जिसे हम *खापड़ी* कहते हैं। हमारी खोपड़ीके नीचे मांसतन्तुओंका बना एक पदार्थ रहता है जिसे हम मस्तिष्क कहते हैं [देखिये चित्र नं० १७]।

मस्तिष्कका आकार प्रायः अण्डेकी शकलका होता है। इसके दो भाग होते हैं—एक ऊपरका और दूसरा नीचेका। ऊपरका भाग नीचेके भागकी अपेक्षा कहीं बड़ा होता है। आगेके बड़े भागको *बृहत् मस्तिष्क* कहते हैं और नीचेके छोटे भागको *लघु मस्तिष्क* कहते हैं [देखिये चि० नं० २८]।

बृहत् *मस्तिष्क*का रङ्ग कुछ सफेद और कुछ मटमैला होता है। यह देखनेमें जोते हुए खेतकी तरह होता है। खोपड़ी तोड़-कर देखनेसे इसमें कहीं उभार दिखाई देगा और कहीं पनाली दिखाई देगी। इसी पनालीका संबन्ध बुद्धिसे है। जो जितना अधिक बुद्धिमान होगा उसके मस्तिष्ककी यह पनाली उतनी ही अधिक गहरी होगी [देखिये चित्र नं० १८]।

बृहत् मस्तिष्कको सामने रख लीजिये और उसकी जांच कीजिये। आप देखेंगे कि ललाटके बीचोंबीच नाककी सीधमें एक रेखा बृहत् मस्तिष्कको एक तरफसे चीरती हुई दूसरी तरफ चली गई है। इस रेखाने बृहत् मस्तिष्कको दो भागों-में बांट दिया है। दाहिनी तरफवाले भागको *दाहिना गोलार्ध* और बायीं तरफवाले भागको *बायां गोलार्ध* कहते हैं। यदि और सूक्ष्म रीतिसे परीक्षा की जाय तो मालूम होगा कि प्रत्येक गोलार्ध तीन भागोंमें विभक्त है—एक सामनेका हिस्सा अर्थात् ललाटके पासका अंश, दूसरा दोनों कनपट्टियोंके पासका अंश और तीसरा पीछे अर्थात् लघु मस्तिष्कके पासका अंश।

इसके बाद बृहत् मस्तिष्कको चाकूसे चीरकर उसके भीतर-की परीक्षा कीजिये। आप देखियेगा कि बाहर तथा भीतरकी बनावटमें बड़ा अन्तर है। बाहरके अंशकी रचना तो सेलोंसे हुई है और भीतरके अंशकी रचना रेशेदार तन्तुओंसे हुई है। इस तरह बाहरी अंश—जो सेलोंसे बना हुआ है—भीतरी अंशके लिये खोलीका काम करता है।

बृहत् मस्तिष्कके नीचे लघु मस्तिष्क रहता है। सूक्ष्म परीक्षा करनेसे इसके भी तीन भाग दिखाई देते हैं। एक भाग तो ठीक बृहत् मस्तिष्कके नीचे रहता है। इसकी पनाली बहुत नजदीक होती है और उभार भी इसी कारण पतला होता है। शेष रचना बृहत् मस्तिष्ककी भांति होती है।

जहां लघु मस्तिष्क समाप्त होता है वहींसे वातसूत्रोंको नीचे या अङ्ग प्रत्यङ्गमें ले जानेके लिये एक नली आरम्भ होती है जिसे सुषुम्ना कहते हैं। सुषुम्नाकी बनावट मस्तिष्ककी बनावटसे ठीक उलटी होती है। अर्थात् इसका उपरी भाग सफेद होता है और भीतरी भाग धूसर तथा इसीके अनुसार ऊपरका भाग तन्तुओंका बना है और भीतरका भाग सेलोंसे बना है। सुषुम्नाका निर्माण छेददार हड्डियोंके जोड़से हुआ है जिसका वर्णन इस छोटी पुस्तकमें नहीं किया जा सकता।

खोपड़ीमेंसे मस्तिष्क अलग निकालकर देखनेसे हमें विदित होता है कि मस्तिष्कका ऊपरी भाग झिल्लियोंसे ढका है। इस झिल्लीकी तीन तह मस्तिष्कको ढककर रखती हैं। इससे मस्तिष्कको तीन प्रकारके लाभ होते हैं। एक तो मस्तिष्ककी रक्षा होती है, दूसरे इन झिल्लियोंके द्वारा मस्तिष्कका एक भाग दूसरे भागसे अलग रहता है क्योंकि झिल्लीका तीसरा परदा मस्तिष्कके भीतर घुस जाता है और तीसरे मस्तिष्कसे जो वातसूत्र निकलते हैं वे इन्हीं झिल्लियोंसे होकर जाते हैं। सुषुम्नाकी रक्षा भी इसी प्रकारकी झिल्लियों द्वारा हुई है जो यही काम करती हैं।

बातसूत्र या नाड़ीसूत्र मस्तिष्कके सभी भागसे निकलते हैं और ऊपर नीचे आ जाकर आपसमें इस तरह बंध जाते हैं कि एकसे दूसरेको अलग करना कठिन है। इस तरह लघु मस्तिष्कसे जो नाड़ीसूत्र निकलते हैं वह श्वेत भागसे निकलकर धूसर भागमें होते हुए वृहत् मस्तिष्कके भागोंमें जाकर मिल जाते हैं और नीचेकी ओर सुषुम्नामें भी जाते हैं। इसी तरह वृहत् मस्तिष्कके नाड़ीसूत्र लघु मस्तिष्क तथा सुषुम्नामें आकर मिल जाते हैं।

नाड़ीसूत्रकी रचना

हम पीछे कह आये हैं कि यदि आप शरीरसे किसी अङ्गको काटिये तो अन्य पदार्थों के साथही साथ आपको पतले सूतके समान तन्तु दिखलाई देंगे। इन्हींको *नाड़ीसूत्र या ज्ञानतन्तु* कहते हैं। देखनेमें ये सफेद होते हैं। हाथसे पकड़कर इन्हें दो अंगुलियोंमें दबाइये तो ये बड़ेही चिमड़े प्रतीत होंगे। यदि आप इन्हें खींचकर तोड़ना चाहें तो ये जल्दी टूटेंगे भी नहीं। यदि आप इन्हें चिमटीसे उधेड़ियेगा तो इनमेंसे अनेक पतले पतले रेशे निकलेंगे।

नाड़ीसूत्रके एक जत्थेमें अनेक ज्ञानतन्तु होते हैं। इन सबका उद्गम-स्थान मस्तिष्क है। मस्तिष्ककी सेलोंसे निकल निकलकर ये जत्था बनाकर बाहर निकलते हैं। इनको इस तरह एकमें रखनेके लिये झिल्लियोंका एक आवरण लगा रहता है।

नाड़ीसूत्र दो प्रकारके होते हैं। एक वे जिनका सम्बन्ध केवल चालसे है, अर्थात् जब हम अपने शरीरके किसी अंगको हिलाना

डोलाना चाहते हैं तो हमारी मानसिक इच्छाका प्रभाव उस नाड़ीसूत्रपर पड़ता है और वह उस अङ्गको चला देती है, जैसे हमारी पुतलियोंका भजना। यह गति उस नाड़ीसूत्रसे चलाई जाती है जो मस्तिष्कसे निकलकर आंखोंमें आई है।

दूसरे वे जिनसे हमें किसी तरहका ज्ञान मिलता है, जैसे किसीने हमारे हाथमें सूई चुभो दी तो हमें दर्द मालूम हुआ अथवा किसीने हमारे सामने बढ़िया पक्का आम लाकर रख दिया तो उसकी भीनी भीनी खुशबू हमारे नाकोंमें भर गई अथवा कोई सुन्दर वस्तु हमारी आंखोंके सामने आई और हमने उसे देख लिया और वह हमारे चित्तपर चढ़ गई।

मस्तिष्कसे नाड़ियोंके बारह जोड़े निकलते हैं जो नाक, कान, आंख, चेहरा, ललाट, मुंह, जीभ, स्वरयन्त्र, फेफड़ा, हृदय, उदर, अंतड़ी, यकृत, आदि अंगोंकी गतिका संचालन करती हैं।

इससे यह विदित हुआ कि मस्तिष्कसे जो नाड़ीसूत्र दिखलाई देता है वह शरीरके ऊपरी भागके कुछ सामनेके अंगोंपर ही अपना अधिकार रखता है। पीछेके अंगोंका, बाहुओंका, पसलियोंका तथा नीचेके अंगोंका संचालन दूसरे नाड़ी सूत्रोंसे होता है। ये नाड़ीसूत्र सुषुम्नासे होकर आते हैं। इनकी संख्या ३१ जोड़ा है।

हम ऊपर कह आये हैं कि सुषुम्ना छेद दार हड्डियोंके टुकड़ोंसे बनी है। ये हड्डियां एक दूसरेपर इस तरह रख दी गई हैं कि आदिसे अन्ततक वे एक नलीके समान हो गई हैं। सुषुम्ना-

के नाड़ीसूत्र इसी नलीमें होकर नीचेकी तरफ गये हैं। जिन टुकड़ोंसे सुषुम्नाकी रचना हुई है उनके अगल बगलमें भी सूराख हैं। इन सूराखोंसे होकर नाड़ीसूत्रके बण्डल बाहर निकलते हैं और अङ्ग प्रत्यङ्गमें जालकी भांति जाकर फैल जाते हैं।

नाड़ीसूत्रोंका काम

इस प्रकरणके आरम्भमें ही हम बतला चुके हैं कि मस्तिष्क शरीरका राजा है और शरीरके सारे अङ्ग इसकी प्रजा हैं। जो आज्ञा वह देता है शरीरके भिन्न भिन्न अङ्गोंको उसका पालन करना पड़ता है तथा शरीरके भिन्न भिन्न अङ्गोंको जो काम अपने मनसे करना होता है उसके लिये राजाके पास वे प्रार्थनापत्र भेजते हैं और राजाकी आज्ञा मांगते हैं। राजाकी आज्ञा बिना कोई भी अंग हिल डोल नहीं सकता।

आप जानते हैं कि प्रत्येक राजमें राजाकी आज्ञा प्रजाके पास पहुंचने तथा प्रजाकी प्रार्थना राजाके पास ले जानेके लिये दूत या चपरासी होते हैं। नाडीसूत्र यही काम करते हैं। उन्हें शरीरके राजाका दूत या चपरासी समझना चाहिये। इस तरह नाडी-सूत्रके दो काम हुए। एक तो मस्तिष्कके पाससे अंगोंके पास सन्देश ले जाना और दूसरे अंगोंकी प्रार्थना राजा मस्तिष्कके पास ले आना। इस हिसाबसे नाड़ीसूत्रके तार दो प्रकारके होने चाहियें। पर शरीरके सब स्थानोंमें इस तरहके तार नहीं पाये जाते। कहीं कहीं दोनों प्रकारके तार होते हैं और कहीं कहीं एक हीप्रकारके तार हैं।

शरीरकी रचनाके बयानमें हम बतला आये हैं कि हमारे शरीरमें दो तरहके मांसतन्तु या पेशियां होती हैं। एक तो वे जिनकी गति विधि हमारी इच्छाके बिना नहीं हो सकती और दूसरी वे जिनकी गति आपसे आप हुआ करती है। हमारा अधिकतर सम्बन्ध इस प्रसंगमें ऐच्छिक मांसतन्तु या पेशियोंसे होगा। अनैच्छिक मांसतन्तु या पेशियोंसे हमारा कुछ मतलब नहीं है क्योंकि हम यह नहीं बतला सकते कि हृदयका राजा उन्हें कब आज्ञा देता है और वे कब चलती हैं तथा रुकती हैं। हम यहांपर केवल ऐच्छिक मांसतन्तु या पेशियोंका वर्णन करेंगे।

जिस नाड़ीसूत्रका काम राजाकी आज्ञा प्रजा तक पहुंचाना है वह मस्तिष्कसे निकलकर शरीरके अंग प्रत्यंगमें आता है और मांसपेशियों तथा ग्रन्थियों अर्थात् बन्धनोंके पास समाप्त होता है। यहां इसमेंसे पतले पतले तार या रेशे निकलते हैं और उन सेलोंपर आसन जमा लेते हैं जिनसे ये मांसपेशियां बनी रहती हैं। इस तरह प्रत्येक सेलपर नाड़ीसूत्रके एक एक तन्तु अपना अधिकार जमा लेते हैं। अब मान लीजिये कि हम अपना हाथ उठाना चाहते हैं। हमारे शरीरका राजा मस्तिष्क नाड़ी-सूत्रके तन्तुओंको आज्ञा देता है कि प्रत्येक सेलको तानो। वह खींचते हैं और सेलें तनने लगती हैं। सेलोंके तनावसे मांस-पेशी तनती है और इस तरह हाथ उठ जाता है।

यह तो हुई आज्ञा लानेवाले तारोंकी बात। इनके अतिरिक्त

एक तरहके और तार होते हैं जो अंगोंकी सूचना मस्तिष्कको पहुं-चाते हैं, जैसे हमारी आंखोंका देखना, हमारी नाकोंका सूंघना, हमारे कानोंका सुनना इत्यादि। जिस समय इन नाड़ीसूत्रोंको कोई काम सौंपा जाता है इनमें बिजलीकी तरह गति या कम्पन उत्पन्न होता है। यदि किसी अंगसे मस्तिष्क तक कोई समाचार न पहुंचे तो हमें समझना चाहिये कि उस अंगके दूत अर्थात् नाड़ी-सूत्र अपना काम नहीं कर सकते। उनकी गति क्षीण होगई और वे खराब होगये हैं।

यह तो हुआ ज्ञानेन्द्रियोंका साधारण धर्म अर्थात् राजाकी आज्ञासे यह काम शरीरमें लगातार जारी रहता है। पर इसके अतिरिक्त हम बहुधा देखते हैं कि हमारे शरीरमें आकस्मिक गति हो जाती है जैसे, हम बैठे हुए कुछ विचार रहे हैं और किसीने पीछेसे आगकी एक चिनगारी हमारी पीठपर रख दी और हम चिहुंक उठे। यह काम इतनी जल्दी हो जाता है कि इसका संवाद मस्तिष्क तक नहीं पहुंच सकता और न मस्तिष्कसे इस गतिके लिये आज्ञा मिल सकती है। तो यह गति किस प्रकार होती है?

नाड़ीसूत्रके मार्गमें धूसर रंगका कणदार एक पदार्थ होता है जिसे ग्रे मैटर कहते हैं। यह ग्रे मैटर नाड़ीसूत्रके मार्गपर बिछा रहता है और इसीपरसे होकर नाड़ीसूत्र आते जाते हैं। आक-स्मिक क्रियामें इसी ग्रे मैटरसे स्फूर्ति पैदा होती है और नाड़ीसूत्रमें वहीं गति उत्पन्न होजाती है। नाड़ीसूत्र वहींसे आज्ञा लेकर लौट पड़ते हैं तो आकांक्षित गति इस अङ्गमें हो जाती है। इस

तरहकी गति हमारे विविध अंगोंमें प्रायः हुआ करती है, जैसे एकाएक पलकोंका बन्द होना आदि। इस तरहकी गतिके लिये हमारा मस्तिष्क जिम्मेदार नहीं है। इस गतिको *परावर्तित गति* कहते हैं।

इस तरह हमने देखा कि ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियोंपर एकमात्र अधिकार मस्तिष्कका रहता है। इसीकी प्रेरणासे शरीरका सारा कार्य होता है। यदि इसकी गति क्षणमात्रके लिये भी रुक जाय तो आफत मच जाय।

नाड़ीसूत्रोंके सम्बन्धमें इससे अधिक जाननेकी सम्प्रति आवश्यकता नहीं है। संक्षेपमें हमने शरीरके प्रायः सभी अवयवोंका वर्णन कर दिया है, केवल आंख, कान और नाकके संबंधमें कुछ नहीं लिखा है।

नाक

नाकके सम्बन्धमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि श्वासोच्छ्वासके प्रकरणमें हमने नाककी रचनाका संक्षिप्त वर्णन कर दिया है। यहां केवलमात्र इतना ही लिख देना पर्याप्त होगा कि मस्तिष्कसे सीधी नाड़ियां इसमें प्रवेश करती तथा निकलती हैं। जिस वस्तुकी सुरभि हवा द्वारा इन तारों तक पहुंचती है इसे ये मस्तिष्क तक लेजाती हैं। सर्दी अथवा जुखामके होजानेसे यह क्रिया रुक जाती है अर्थात् हमें गन्धका पता नहीं लगता। इसका कारण यह है कि सर्दीके कारण नाकके परदे कुछ फूल जाते हैं और हवाका स्पर्श नाड़ी-सूत्रोंसे नहीं होता।

आंख

आंखकी रचना बड़ी ही रोचक है, इसलिये संक्षेपमें इसका वर्णन हम यहांपर कर देते हैं। किसी फोटोग्राफरके पास चले जाइये और उससे कहिये कि भाई, जरा अपना फोटो उतारनेवाला कमेरा दिखला दो और यह समझा दो कि शीशेके प्लेटपर आदमीका अक्स किस तरह आकर पड़ता है। यदि आप उसे समझ लेंगे तो फिर आंखकी बनावट समझनेमें कोई कठिनाई नहीं रह जायगी। आंखकी बनावट ठीक फोटोके कमेरेके समान है। यदि आप दो ठोस रबरके गेंद—एक छोटा और दूसरा बड़ा—लेकर दोनोंको बीचोंबीचसे काट दें और छोटेको बड़े टुकड़ेमें सटाकर सामनेकी तरफ रख दें तो आपको आंखकी बनावटका नमूना मिल जायगा। अगले भागको हम पुतली कहते हैं, यह निर्मल और साफ है। इसे आप फोटोग्राफरके कमेरेका लेंस कह सकते हैं। किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब इसी-पर पड़ता है और इसीसे होकर भीतर जाता है।

इस गोलाकारपर तीन परदे चढ़े रहते हैं। पहला ऊपरका परदा सफेद होता है, दूसरा परदा नीला होता है और तीसरा परदा कुछ कुछ हरा और नीला होता है। जो वस्तु हम देखते हैं उसका प्रतिबिम्ब उपरवाले परदेपर पड़ता है, इससे बीचवाले परदेपर और बीचवाले परदेसे होकर तीसरे परदेपर पड़ता है। यहांसे नाड़ीसूत्रों द्वारा उस वस्तुका ज्ञान हमारे मस्तिष्कमें पहुंचता है। इस प्रकार हमारे देखनेकी क्रिया समाप्त होती है।

आगेका परदा यदि मलीन हो जाता है तो प्रतिविम्ब साफ नहीं पड़ता और हमें चीजें धुंधली दिखाई देती हैं।

आंखके गोलेमें यह गुण है कि आवश्यकतानुसार ये घट बढ़ जाते हैं।

कितने लोग ऐसे होते हैं जिनको नजदीककी वस्तु साफ दिखाई देती है और दूरकी वस्तु साफ नहीं दिखाई देती। इसके विपरीत कितने लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें दूरकी वस्तु साफ साफ दिखाई देती है पर नजदीककी वस्तु साफ नहीं दिखाई देती। इसका कारण आंखके गोलेमें विकार होता है। जिसका गोलाकार अधिक गोल होजाता है उन्हें कम दिखाई देता है, दूरकी वस्तुओंका प्रतिबिम्ब ठीक तरहसे आकर पड़ता है पर नजदीककी वस्तुओंका प्रतिबिम्ब ठीक नहीं पड़ता। ठीक इसीके प्रतिकूल बातें उन लोगोंके साथ होती हैं जिनको आंखका गोलाकार चिपटा होजाता है। किसी किसीकी आंखोंमें इस तरहका विकार स्वभावतः होजाता है। जिन कारणोंसे आंखकी पुतलियोंपर अधिक जोर पड़ता है उनसे भी यह विकार उत्पन्न होजाता है, जैसे महीन अक्षरोंका लगातार पढ़ना, बारीक सिलाई करना इत्यादि। इसलिये इस तरहका काम अधिक देर तक नहीं करना चाहिये।

आंखका वर्णन हमने बहुत संक्षेपमें किया है। इस छोटीसी पुस्तकमें इससे अधिक नहीं लिखा जा सकता।

कान

कानके सम्बन्धमें साधारणतः इतना जान लेना पर्याप्त होगा कि बाहरसे जो छेद दिखाई देता है वही श्रवणेन्द्रियका काम करता है। जहां इस छिद्रका अन्त होता है वहीं एक पतली झिल्लीका परदा सटा रहता है, जैसे आपने ढोल या तबलेमें देखा होगा। उसके पास मुंगरेके आकारका बना एक दण्ड या डंडा रहता है। जिस समय हवाका झोंका शब्दकी ध्वनि लेकर कानके छेदोंद्वारा भीतर प्रवेश करता है और मुंगरेके पास पहुंचता है वह मुंगरेसे टकराता है। हवाके वेगसे आवाज होती है और उसी आवाजको, जो हवाकी प्रतिध्वनि होती है, लेकर श्रवणका नाड़ीसूत्र मस्तिष्कमें पहुंचाता है।

झिल्लीके फट जानेसे, मुंगरेके खराब होजानेसे, कानमें अधिक मैल जम जानेसे अथवा नाड़ीसूत्रोंके खराब हो जानेसे हम बहरे होजाते हैं।

समाप्त

सरल पारिभाषिक शब्द

A.

Abdomen	पेट
Absorption	आत्मीकरण
Alimentary Canal	अन्न-प्रणाली
Anus	मलद्वार
Aorta	महाधमनी
Artery	धमनी
Ascending Aorta	ऊर्ध्वगा महाधमनी
Assimilation	एकीकरण
Auricle	ग्राहक कोष्ठ

B.

Base of skull	करोट पीठ
Blood	रक्त
,, Corpuscle	रक्त-कण
,, Serum	रक्त रस
,, Plasma	रक्त-वारि
,, Vessel	रक्त-वाहिनियां
Body	गात्र
Bone	अस्थि
Bronchi	वायुप्रणाली

C.

Capillary	केशिका
Cartilage	उपास्थि
Callclose	छिलका
Cerebellun	लघु-मस्तिष्क
Cerebrum	बृहत्–मस्तिष्क
Chemical	रसायनिक
Chyme	अन्नरस
Clavicle	हंसली
Clot	थक्का
Contraction	सिकोड़

D.

Descending Aorta	अधोगामी महाधमनी
Destination	इष्ट प्रदेश
Diaphragma	वक्ष-उदर-मध्यस्थ
Digestive Canal	आहार-पथ
Digestive System	पाक-प्रणाली

E

Elastic	लचीला
Element	मूलतत्व
Energy	शक्ति
Epidermis	उपचर्म
Eustachian tube	कण्ठकर्णी नाली
Eye	आंख

Eye-ball	अक्षि-गोलक
Execretion	मलोत्सर्जन
Expiration	प्रश्वास

F

Fat	चर्बी
Faceas	मल
Fibre	सूत्र
Fibrous tissue	सौत्रिक-तन्तु
Forearm	अग्रबाहु, प्रकोष्ठ
Forehead	ललाट, माथा

G.

Gastric juice	आमाशयिक रस
Gland	गांठ

H.

Hair	लोम
Hair-follicle	लोम-कूप
Heart	हृदय

I.

Immovable joint	अचल सन्धि
Inferior vena cava	अधोगा महाशिरा
Inferior lip	अधोष्ठ
Involuntary	अनैच्छिक
Inner surface	अन्तस्तल

Inspiration	उच्छ्वास, सांस खींचना
Intestine	अंतड़ी

J.

Joint	जोड़
Jelly	थक्का

K.

Kidney	गुर्दा

L.

Larynx	स्वरयन्त्र
Ligament	बन्धन
Liver	यकृत
Lung	फेफड़ा
Lymph	लसीका

M.

Malleus	मुंगरा, मुद्गर
Medulla spinelis	सुषुम्ना
Membrane	झिल्ली
Movement	गति, चाल
Muscle	मांसपेशी

N.

Nerve	नाड़ी, वात
Nerve fibre	नाड़ीसूत्र
Nervous tissue	वाततन्तु
Nervous system	नाड़ी-संस्थान

O

Oesophagus	अन्न-प्रणाली
Organ	अङ्ग
Oridation	ओषजीकरण

P.

Palate	तालु
Pericardium	हृदयका आवरण
Pharynx	कण्ठ
Physiology	शरीर विज्ञान
Pleura	फेफड़ेका आवरण
Portal vein	संयुक्त शिरा
Pulmonary artery	फुसफुसिया धमनी
,, Vein	,, शिरा

R.

Radius	बहि:प्रकोष्ठास्थि
Rectum	मलाशय
Reflex action	प्रत्यावर्तन
Reproduction	उत्पादन
Relaxation	फैलाव
Rib	पसली

S.

Saliva	लार
Salivary gland	लारकी गांठें
Sense organ	ज्ञानेन्द्रिय

Semicircular canal	अर्ध-चन्द्राकार नली
Semilunar	अर्ध-चन्द्राकार
Skeleton	ठठरी
Skull	खोपड़ी
Small Intestine	छोटी अंतड़ियां
Spinal cord	सुषुम्ना
Spleen	प्लीहा
Starch	श्वेतसार
Sternum	उरोस्थि
Superior	ऊर्ध्व
Superior vena cava	ऊर्ध्व महाशिरा
Sweat	पसीना

T.

Temperature	गर्मी
Thigh	उरु, जांघ
Thorax	उरस्थल,छाती
Tissue	तन्तु
Trachea	टेंटुआ
Trunk	धड़
Tubular	नाल्याकार

U.

Ulna	अन्तः प्रकोष्ठास्थि
Urine	मूत्र
Urinary bladder	मूत्राशय

Ureter	मूत्रप्रणाली
Urethra	मूत्रमार्ग
Urinary system	मूत्रवाहक संस्थान

V.

Valve	कपाट
Ventricle	क्षेपक कोष्ठ
Vertebral column	रीढ़
Vibration	उत्कम्पन
Voluntary	ऐच्छिक

हिन्दी-पुस्तक-मालाका पहला पुष्प

स्वाधीनताके सिद्धान्त

लेखक—आयर्लैंडके सत्याग्रही वीर

टेरेन्स मौक्स्विनी !

इसमें लेखकने स्वाधीनताके सच्चे सिद्धान्तोंका वर्णन किया है। स्वाधीनताका मूल क्या है, इङ्गलैण्डसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेसे दोनों देशोंको क्या क्या लाभ है, सच्चा नैतिक बल क्या है, शत्रु कौन है और मित्र कौन है, शक्तिका असली रहस्य क्या है, आचार-व्योहारमें सिद्धान्त किस प्रकार माने जाते हैं, दृढ़-भक्ति किसे कहते हैं, वीर नारियोंका धर्म क्या है, सम्राज्यवादमें कितनी बुराइयां भरी हुई हैं सशस्त्र प्रतिरोध उचित है या अनुचित, कानूनका सच्चा अर्थ क्या है, सशस्त्र प्रतिरोध किस समय करना चाहिये, आदि आदि विषयोंका वर्णन इस ग्रन्थमें बड़ी ओजस्विनी भाषामें किया गया है। हिन्दीके सभी समाचारपत्रोंने इस ग्रन्थकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसाकी है। पुस्तकके आरम्भमें ग्रन्थकारका सचित्र चरित्र भी दिया गया है। स्वतन्त्रता-प्रेमियोंको अवश्य इसे मंगाकर पढ़ना चाहिये ऐसे अमुल्य ग्रन्थका मूल्य भी सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये केवल १) रखा गया है।

कर्म्मयोग

लेखक—बंगालके सच्चे कर्मयोगी

श्रीअश्विनीकुमार दत्त

लेखकने इस पुस्तकमें कर्मयोगके कठिन विषयको उदाहरणों द्वारा बड़ी ही सरलतासे समझाया है। निष्काम कर्मकी महिमा बतलाते हुए आपने सच्चे कर्मयोगीके लक्षणोंकी विशद रूपमें व्याख्या की है। आपका यह ग्रन्थ कैसा है इसके सम्बन्धमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी मुखपत्रिका लिखती है :—

"श्री अश्विनीकुमार दत्तकी लेखनीका चमत्कार किसी सहृदय साहितज्ञसे छिपा नहीं है। दत्त महोदयने भक्तियोग, प्रेम और कर्मयोग जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर संसार-संतप्त जीवोंको आध्यात्मिक सुशीतल छाया दान करके भारतवर्षको चिरवाधित किया है। इस पुस्तकमें आपने आदर्श कर्मभूमि, मोक्षसेतु, कर्मकेन्द्र, निष्काम कर्म, लोकसंग्रह, कर्मयोगीके लक्षण प्रभृति गहन विषयोंको बड़ी ही सरलता, सरसता, मनोरंजकता और विवेचना द्वारा अंकित किया है। पढ़ते पढ़ते चित्तको एक अपूर्व विश्रांतिका आनन्द मिलता है। किंकर्तव्यविमूढ़ भारतीय जनताको यह "कर्मयोग" नामक पुस्तक संजीवनी शक्तिका काम देगी, इसमें सन्देह नहीं। अनुवादक महोदयका प्रयास सफल और स्तुत्य है।" करीब १५० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य केवल ॥)

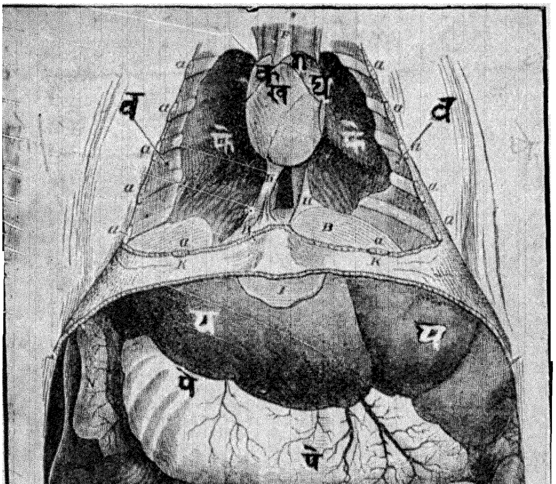

क
ग
ख
घ
ब
व
फे
फे
य
प
प
पे
अ
अ
अ